॥ श्रीहरिः ॥

मानवताका पुजारी

(पढ़ो, समझो और करो)

गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रकाशक—गोबिन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०२६ से २०५७ तक १,६२,०००
सं० २०५८ पन्द्रहवाँ संस्करण ५,०००
योग १,६७,०००

मूल्य—आठ रुपये

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
फोन : (०५५१) ३३४७२१; फैक्स ३३६९९७
e-mail:gitapres@ndf.vsnl.net.in
visit us at: www.gitapress.org

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

मानवताका पुजारी नामक इस पुस्तकमें बहुत ही मङ्गलमयी प्रेरणादायक सत्य घटनाओंका संग्रह है। इसमें ऐसी भी घटनाका वर्णन है, जिनसे पतनके पथसे हटकर उत्थानके सत्य पथपर आरूढ़ तथा अग्रसर होनेमें बड़ी सहायता मिलती है। अपना उत्थान चाहनेवाले सभी लोगोंको इससे लाभ उठाना चाहिये।

—प्रकाशक

——::×::——

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

विषय पृष्ठ-संख्या

——::×::——

श्रीहरिः

मानवताका पुजारी

[पढ़ो, समझो और करो]

गत १९५६ ई० में भाषावादके ठेकेदारोंने बम्बईमें बड़ा फसाद फैलाया था। जगह-जगह लूटपाट और तोड़-फोड़ चल रही थी। इस प्रकारका दंगा होनेपर भी कुछ लोग कौतूहलवश शहरमें कहाँ कैसा दंगा हो रहा है, इसे देखने जा रहे थे। मैं भी फ्लोरा फाउन्टेन और म्यीजियमकी ओर दंगा देखने गया था। शामको लगभग चार-पाँच बजे मैं घर आनेके लिये बसपर सवार हुआ। हमारी वह बस दो या तीन स्टाप ही गुजरी थी कि सामनेसे डेढ़-दो सौ लोगोंका समूह आता दिखायी दिया………। समीप आकर उन्होंने बस रुकवा दी। इसी बीचमें ड्राइवर अपनी जान बचानेके लिये बस छोड़कर भाग गया; परंतु उसी समय बसमेंसे एक तरुण जल्दीसे उठा और उसने बसका संकटकालीन द्वार खोलकर सबसे कहा—'आपलोग तुरंत इस मार्गसे बाहर निकल जाइये, तबतक मैं इस टोलेको रोके रखता हूँ।' इतना कहकर वह जवान बसके दरवाजेके पास गया और उसने दरवाजेका हैंडल पकड़कर अंदर घुसते टोलेको रोक लिया। इधर जिसको जो रास्ता दिखायी दिया, उसी ओर सब लोग भाग गये; परंतु उनमेंसे किसीके भी मनमें यह विचार नहीं आया कि हमलोगोंकी रक्षाके लिये जिसने बसके अंदर घुसते हुए समूहको रोक रखा, उसकी क्या दशा होगी? अवश्य ही उन्हीं लोगोंमें मैं भी था; क्योंकि उस समय मुझे अपने प्राणोंकी लगी थी।

दूसरे दिन सबेरे समाचारपत्र पढ़नेके लिये उठाया तो उसमें पहले ही पृष्ठपर बड़े-बड़े टाइपोंमें छपे शीर्षकपर मेरी दृष्टि अटक गयी। लिखा था, 'फ्लोरा फाउन्टेनपर जलायी गयी बस, मुसाफिरोंकी भगदड़, एक युवकको भयंकर चोट, अस्पतालमें उसकी चालू बेहोशी···· पढ़कर मेरे

शरीरमें एक क्षीण-सी कँपकँपी छूट गयी। मेरा मन कहने लगा—'यह वही युवक तो नहीं है, जिसने हमलोगोंको बसमेंसे बचाकर निकाला था। उसी समय मेरे मनमें उस युवकसे मिलनेकी उत्कण्ठा बढ़ गयी और मैं अस्पतालकी ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर मैंने जो कुछ देखा, उससे मेरे पैर वहीं रुक गये। हाय! यह वही युवक है, जिसने बसमें हमलोगोंको बचाया था। इस समय उसको होश था, मैंने उससे तबीयतके बारेमें पूछा—परंतु वह बोल नहीं पा रहा था। इससे उसने आँखके इशारेसे मुझे पास बुलाया। मैंने उसके पास जाकर नाम पूछा। उसने बड़ी मुश्किलसे बहुत धीमे स्वरमें कहा—'आनन्द'। मैंने कहा—'आपके घरवालोंको पता लगा है कि नहीं।' उसने 'न'कारमें सिर हिलाया। 'मुझे पता दीजिये मैं उनको खबर कर दूँगा' मैंने कहा।

तकियेके नीचेसे कागज निकालते हुए बहुत ही धीमी तथा रूँधी आवाजमें उसने कहा—'यह ·····मे·····रा···पता·····है, हो·····सके तो···तार देकर वहाँ जना दीजिये—कि 'तुम्हारा आनन्द मृत्युको प्राप्त'— इतना कहते-कहते ही उसका मस्तक ढुलक गया और उसके प्राणपखेरू इस स्वार्थी जगत्‌का त्याग करके उड़ गये! इसी समय डाक्टरने कमरेमें प्रवेश करके उसे चद्दर उढ़ा दी। इस करुण दृश्यको देखकर मेरे हृदयको बड़ा धक्का लगा और सहसा मेरे मुखसे निकल पड़ा—'चला गया मानवताका पुजारी।'—अखण्ड आनन्द'

—अर्जुन एल्० राठौर

ताँगेवालेकी आदर्श ईमानदारी और सेवाभाव

घटना पुरानी नहीं, मुश्किलसे कुछ ही वर्ष हुए होंगे। मध्यप्रदेशके एक प्रतिष्ठित व्यापारी पचास हजार रुपये लेकर दक्षिणमें (मैसूर, मदुरा और मद्रास) माल खरीदनेके लिये जा रहे थे। इस प्रान्तमें शतरंजी और साड़ियाँ एवं मैसूरमें चन्दनकी लकड़ीकी कलामय वस्तुएँ अच्छी और सुन्दर बनती हैं। व्यापारीने एक-एक हजारके ५० नोट बनियानकी दोनों जेबोंमें रख लिये और जेबोंको खूब सी लिया था। सबसे पहले यह व्यापारी मैसूर उतरकर यहाँसे १४ मील दूर कृष्णराज-सागरका बाँध और इलेक्ट्रिक प्रदर्शन देखने गया।

यह प्रदर्शनीय स्थल शामको ४ बजेसे रातके १० बजेतक मैसूर-सरकारकी ओरसे आम जनताके लिये खुला रहता था। व्यापारीने कृष्णराज-सागरका बाँध एवं अद्भुत विद्युत्-प्रकाश, जो कि फव्वारों और क्यारियोंमें अपनी अनोखी छटा दिखाकर दर्शकोंको मोहित कर लेता है, देखा। देखकर वह पुलकी सीढ़ियोंपर चढ़ रहा था कि उसे अचानक चक्कर आया और वह पुलकी सीढ़ियोंपर लुढ़कता हुआ नीचे आ गया।

व्यापारीका शारीरिक सुदृढ़ गठन और शारीरिक शक्ति अच्छी थी। अतः वह हाथ-पैरों एवं मस्तिष्कका रक्त पोंछकर फिर पुलकी सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। अन्तिम सीढ़ीपर ज्यों ही पैर रखा कि उसे फिर जबर्दस्त चक्कर आया और दूसरी बार पुनः सीढ़ियोंपर लुढ़कने लगा। पुलके पास ही ताँगा-स्टैंड है। कई ताँगेवाले खड़े थे, जिनमेंसे एक ताँगेवालेने इस व्यापारीको पुलकी सीढ़ियोंसे लुढ़कते देख लिया। वह चाबुकको ताँगेमें रखकर पुलपर आया। तबतक आहत व्यापारी लुढ़कता हुआ सबसे नीचेकी सीढ़ीपर आकर लहूलुहान हालतमें पड़ा था। बेहोशी भी आ गयी थी।

ताँगेवालेने उस रक्तरञ्जित व्यापारीको, जिसके वस्त्र रक्तमें सने थे, गोदीमें उठाया और जैसे-तैसे सीढ़ियाँ चढ़कर ताँगेमें सुला दिया। एक हाथसे व्यापारीको, जो कि वह मृतक-सी अवस्थामें था, पकड़े और एक हाथसे घोड़ेकी रास थामे अपने घोड़ेको हाँक रहा था। चार-पाँच

मील चलनेके बाद व्यापारीको कुछ होश-सा आया और उसने लड़खड़ाती जबानसे पूछा—'कौन?' 'मैं हूँ ताँगेवाला। मैंने आपको कृष्णराजसागरके पुलके जीनेसे गिरते हुए देखा था। आपके साथ कोई था नहीं और आप बेहोशीकी हालतमें थे। मेरे मनमें आया कि मैं एक घायल व्यक्तिकी सेवा करूँ और आपको अपने घर पहुँचा दूँ। हूँ तो ताँगेवाला, पर ईमानदार हूँ और ईमानदारीके लिये ही जीता हूँ।'

व्यापारीने कोटकी जेबमेंसे एक सौका नोट निकालकर ताँगेवालेको देते हुए कहा 'लो तुम्हारे लिये इनाम।'

ताँगेवालेने व्यापारीसे कहा—'सेवाका मूल्य सोने-चाँदीके टुकड़ों या कागजके रंगीन टुकड़ोंसे नहीं आँका जा सकता। मैं आपको इसलिये नहीं लाया कि आप मुझे इनाम दें और न मुझे इस प्रकारका लोभ-लालच ही है। मेरा पेशा ऐसा है कि सभ्यसमाज इस पेशेको हलका पेशा कहता है और हमारे समाजको बेईमान, धोखेबाज, चालबाज बतलाता है। पर ऐसी बात नहीं है। मैं तो भगवान्‌को चारों ओर देखकर जीता हूँ। मुझे डर लगता है कि यदि मैं बेईमान हो गया तो भगवान्‌के न्यायालयमें क्या उत्तर दूँगा। मैं ऐसा मानता हूँ कि इस प्रकार मेरा डरना मेरे लिये ईमानदार बननेके सम्बन्धमें रामबाण सिद्ध हुआ है।'

ताँगेवालेका लम्बा भाषण सुनकर व्यापारीने कोटकी दूसरी जेबमेंसे सौ-सौके पाँच नोट निकाल ताँगेवालेके हाथपर रख दिये। ताँगेवाला अबकी बार झल्ला उठा और उसने कहा, 'माफ कीजिये, मुझे एक भी पाई आपसे लेना हराम है!' और उसने सौ-सौके पाँच नोट व्यापारीको लौटा दिये, किंतु नोट व्यापारीके हाथोंमें न जाकर ताँगेमें ही गिर गये। ताँगेवालेने मुड़कर देखा तो व्यापारी बेहोश हो गया था और उसके मुँहसे सफेद झाग निकल रहे थे।

इस दृश्यको देखकर ताँगेवालेके मुँहपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। हे प्रभो! क्या यह व्यक्ति अपने घर पहुँचनेके पहले ही विदा ले लेगा और मेरी सेवा अधूरी रहेगी? यह व्यक्ति तो श्रीमान् मालूम पड़ता है,

अन्यथा दो-चार रुपयेकी मजदूरीके लिये ५०० रुपये न देता। लगता है यह व्यक्ति मैसूर या मैसूर-प्रान्तका नहीं है; यह हिंदी बोलता है, उत्तरप्रदेश या मध्यप्रदेशका होना चाहिये। तब क्या यह व्यापारी है? तब तो इसके पास हजारों रुपये होंगे। मैसूर यहाँसे ८ मील दूर है और वहाँतक पहुँचनेके लिये कम-से-कम एक घंटा लगेगा।

पाँच नोट जो कि ताँगेमें ही गिर गये थे, उन्हें उठाकर उसने व्यापारीकी कोटके जेबमें रख दिया। पर कोटके नीचे कुछ उठा हुआ-सा भाग दीख रहा था, ताँगेवालेने टटोलकर देखा तो बनियानके दोनों जेब लबालब भरे थे। उसे संतोष हुआ कि दोनों जेब सिले हुए थे। ठीक १० बजे ताँगेवाला मैसूर पहुँचा और पुलिस-स्टेशनपर जाकर ताँगा रोका और रिपोर्ट की।

समयकी बात कि उस समय डी० एस० पी० वहीं थे। वे अन्य चार पुलिस जवानोंके साथ ताँगेके पास आये। देखा तो एक सुन्दर सुडौल गौरवर्ण नवयुवक मुँहसे झाग डाल रहा है। कभी-कभी एक सेकेंडके लिये आँखें खुल जाती हैं। डी० एस० पी० ने सबसे पहले सिविल सर्जनको फोन करके बुलाया। इसके बाद पुलिसके जवानोंके साथ नवयुवककी तलाशी ली। कोटके जेबसे सौ-सौके ७ नोट, माल खरीदनेकी सूची, डायरी और कर्नाटक रेस्टोराँकी एक स्लिप मिली। कमीजका जेब खाली मिला। बनियानके जेब खोलकर देखे गये तो पचास हजारके नोट मिले।

अब डी० एस० पी० को यह समझते देर न लगी कि यह मध्यप्रदेशका एक प्रतिष्ठित व्यापारी है, दक्षिण-प्रान्तमें माल खरीदने आया है। ताँगेवालेके बयान लिये। उसने ईमानदारीके साथ सभी घटनाएँ स्पष्ट रख दीं। ताँगेवालेकी ईमानदारीसे डी० एस० पी० को विशेष हर्ष हुआ कि एक ताँगेवाला, जिसे लोग बेईमान समझते हैं, कितना ईमानदार हो सकता है। फिर डी० एस० पी० ने कर्नाटक रेस्टोराँके मैनेजरको फोन किया कि रोजनामचा (जिसमें बाहरसे आनेवाले मुसाफिरोंका नाम, धाम एवं पता होता है) लेकर शीघ्र आओ। इतनेमें सिविल सर्जन

****

मय स्टाफ (नर्सरी एवं सर्जरी) के आ गये, उन्होंने बीमारीकी श्रमपूर्वक अच्छी तरह जाँच की।

जाँचकर सिविल सर्जनने बताया कि यह मरीज अधिक-से-अधिक एक घंटेका मेहमान है। सतत रक्तप्रवाहके कारण अब इसका बचना असम्भव है। डाक्टरने अथक प्रयत्न करके आहत नवयुवक व्यापारीको सचेत किया। वह होशमें आ गया। उसने पासमें ही ताँगेवालेको बैठा देखा और धीमे स्वरमें कहा—'मैं कृष्णराज-सागर-पुलकी सीढ़ियाँ चढ़ रहा था कि एकाएक चक्कर आया और मैं जमीनदोस्त हो गया। जैसे-तैसे साहस करके दुबारा सीढ़ियाँ चढ़ने लगा कि मुझे फिर चक्कर आ गया। इसके बाद क्या हुआ, यह मुझे पता नहीं। होश आनेपर मैंने अपने-आपको पाया कि मैं एक ताँगेमें जा रहा हूँ। विचार आया कि ताँगेवालेने हमदर्दीके नाते मुझपर दया की और मैसूर ले जा रहा है।

'मैं ताँगेवालेकी हमदर्दीसे बहुत प्रभावित हुआ और उसे १०० रुपये इनाममें देने लगा। पर उसने नहीं लिये। फिर ५०० रुपये इनाममें दिये। इनाम देनेके बाद ही मुझे बेहोशी आ गयी। होश आनेपर मैं आपलोगोंको अपने सामने देख रहा हूँ। मुझे यह पता नहीं कि ताँगेवालेने ५०० रुपये लिये या नहीं; यह मुझे ईमानदार, नेक एवं सेवाभावी व्यक्ति मालूम होता है।' इतनेमें कर्नाटक रेस्टोराँके मैनेजर आ गये। उन्होंने वह रोजनामचा बतलाया, जिसमें निम्न प्रकार लिखा हुआ था—ता० २२-१२-५४ श्रीमहेशचन्द्र कौल, फर्मका नाम महेशचन्द्र गिरिजाशंकर, निवासी मालपुरा, जिला बस्तर, मध्यप्रदेश। तीन दिन रेस्टोराँमें ठहरनेकी स्वीकृति और मैनेजरके हस्ताक्षर थे।

इसके बाद महेश कौलने पुनः मन्द स्वरमें कहा—'मुझे ऐसा लगता है कि अब मैं कुछ ही मिनटोंका मेहमान हूँ। ताँगेवालेने मेरी खूब सेवा की है, इसे पाँच हजार रुपये मेरी ओरसे इनाम दे देना। मैं पचास हजार नौ सौ रुपये लेकर घरसे चला था। पचास हजार मैंने बनियानके जेबमें रख लिये थे। और नौ सौ ऊपरी खर्चके लिये,

जिसमें ७०० रुपये अभी भी मौजूद हैं। शेष खर्च (मार्गव्यय आदि) हो गये। आप मेरी फर्मके नामपर फोन कर दें, मेरा छोटा भाई गिरिजाशंकर आ जायगा।'

डी० एस० पी० ने कहा—'आप घबराइये नहीं, हम सरकारी नौकर ही नहीं, आपलोगों (जनता) के भी नौकर एवं सेवक हैं। आपके ५०,७०० रुपये सुरक्षित हैं। आपने ताँगेवालेको पाँच सौ रुपये दिये थे, वे उसने लिये नहीं और आपकी बेहोशी-हालतमें उसने आपके कोटके जेबमें रख दिये थे। सचमुच ताँगेवाला बहुत ही ईमानदार व्यक्ति है, इसकी ईमानदारी जनताको ईमानदार बननेका पाठ पढ़ाती है। मैंने बहुत-से ताँगेवाले देखे हैं, पर ऐसा ईमानदार ताँगेवाला नहीं देखा। आपकी बेहोशी-हालतमें वह ५०,७०० रुपये अपने कब्जेमें करके, आपका गला घोंटकर चाहे जहाँ भाग सकता था। पर जहाँ ईमानदारीका प्रश्न है, वहाँ न तो परका हनन होता और न स्वयंका, वहाँ तो स्व-परका संरक्षण एवं कल्याण होता है।'

महेश कौल डी० एस० पी० के कथनको ध्यानसे सुन रहा था कि दो मिनट बाद ही उसे खूनकी उलटी हुई और उसके प्राणपखेरू उड़ गये। तमाम पुलिस स्टाफ, सिविल सर्जनका स्टाफ और कर्नाटक रेस्टोराँके स्टाफने सलाह करके निर्णय किया कि महेश कौलके शवका अग्नि-संस्कार ताँगेवाला ही करेगा; इसकी महती सेवा है और सेवाके नाते इसे यह अधिकार प्राप्त है। ताँगेवालेने काँपते हाथों 'कौल'के शवका अग्निसंस्कार किया और चितामेंसे निकली धूम्रराशि अनन्त आकाशमें विलीन होने लगी।

शव-यात्राके यात्री विधिके विधानपर सोच रहे थे कि 'कौल' कहाँ जन्मा, कहाँ स्वर्गवासी हुआ और किस प्रकार पचास हजारकी रकम सुरक्षित बची रही । दूसरी ओर उपस्थित जनता ताँगेवालेकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा कर रही थी और ताँगेवालेकी ईमानदारीके प्रति सभीके मस्तक झुके हुए थे।

तीसरे दिन महेशचन्द्र 'कौल' के छोटे भाई श्रीगिरिजाशंकर आ

गये। उन्होंने महेशकी मृत्यु-सम्बन्धी सभी समाचार ज्ञात किये। उन्हें भाईकी मृत्युसे असह्य दुःख हुआ, पर ताँगेवालेकी ईमानदारी, उदारता एवं निःस्वार्थ वृत्तिसे अपार आनन्द भी हुआ। गिरिजाशंकरने विचार किया कि भाई साहब पचास हजार रुपयेका माल खरीदने आये थे। अब वे असमयमें ही चले गये, फिर ये रुपये मैं वापस क्यों ले जाऊँ? बड़े भाईकी स्मृतिस्वरूप ताँगेवालेकी सेवाके उपलक्ष्यमें उसे दान क्यों न कर दूँ? फलतः गिरिजाशंकरने पचास हजारकी बृहद् धनराशि ताँगेवालेको देते हुए कहा कि 'तुम्हें और तुम्हारे बच्चोंके ये काम आयेंगे।' पर ताँगेवालेने दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा—'भाई! आप मुझे जो धनराशि दे रहे हैं, उसका मूल्य है; पर ईमानका मूल्य नहीं होता। अतः आप मुझे आशीर्वाद दें कि मेरे लिये सतत अमूल्यनिधि ईमानकी प्राप्ति हो; फिर मैं संसारमें सबसे बड़ा धनिक हूँ, ऐसा मैं मानता हूँ। आप मुझे क्षमा कर दें। मैं आपका आज्ञापालन करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ। रही बात बच्चोंकी, सो वे अपने भाग्यके निर्माता स्वयं हैं। गरीबीमें ईमान बना रहे, यही मुझे और मेरे परिवारके लिये सब कुछ है।' गिरिजाशंकरके मुँहसे अनायास निकल गया 'तुम मनुष्य नहीं, मनुष्यके रूपमें देवता हो। मैं अपने भाईको खोकर और तुमसे ईमानदारीका बोधपाठ लेकर हर्ष-विषादके वातावरणमें अपने देश वापस जा रहा हूँ, तुम्हारी ईमानदारीकी चर्चा सर्वत्र करूँगा।' धन्य!

—'स्वतन्त्र'

मनुष्यमें देवता

रायचन्दभाईका बम्बईमें जवाहरातका बड़ा व्यापार था। उन्होंने एक दूसरे व्यापारीसे सौदा किया। सौदेमें यह निश्चय हुआ कि अमुक तिथिके अंदर अमुक भावमें वह व्यापारी रायचन्दभाईको इतने जवाहरात दे दे। सौदेके अनुसार लिखा-पढ़ी हो गयी। कंट्राक्टके दस्तावेजपर हस्ताक्षर हो गये।

परिस्थितिने पलटा खाया। इसी बीच जवाहरातकी कीमत इतनी अधिक बढ़ गयी कि वह व्यापारी यदि रायचन्दभाईको कंट्राक्टके भावसे जवाहरात दे तो उसको इतनी अधिक हानि हो कि उसे अपना घर-द्वारतक बेचना पड़े।

रायचन्दभाईको जब उस जवाहरातके वर्तमान भावका समाचार मिला, तब वे तुरंत ही उक्त व्यापारीकी दूकानपर पहुँचे। रायचन्दभाईको देखते ही वह व्यापारी घबरा गया और बड़ी ही नम्रतासे कहने लगा—'रायचन्दभाई! मैं अपने उस सौदेके लिये बहुत ही चिन्तातुर हूँ। जैसे भी हो, वर्तमान बाजारभावके अनुसार मैं जवाहरातके नुकसानके रुपये आपको चुका दूँ। आप चिन्ता न करें।'

रायचन्दभाईने कहा—'क्यों भाई! मैं चिन्ता कैसे न करूँ। जब आपको चिन्ता होने लगी है, तब मुझको भी होनी ही चाहिये। हम दोनोंकी चिन्ताका कारण तो यह कंट्राक्टका दस्तावेज ही है न? यदि इस दस्तावेजको नष्ट कर दिया जाय तो दोनोंकी चिन्ताकी पूर्णाहुति हो जाय।'

व्यापारीने कहा—'ऐसा नहीं; मुझे आप दो दिनकी मुहलत दीजिये। मैं कैसे भी व्यवस्था करके आपके पैसे चुका दूँगा।'

रायचन्दभाईने दस्तावेजको फाड़कर टुकड़े-टुकड़े करते हुए कहा—'इस दस्तावेजसे ही आपके हाथ-पैर बँध रहे थे। बाजार-भाव बढ़ जानेसे मेरे साठ-सत्तर हजार रुपये आपकी ओर निकलते हैं। परंतु मैं आपकी वर्तमान परिस्थिति जानता हूँ। मैं ये रुपये आपसे

लूँ तो आपकी क्या दशा हो? रायचन्द दूध पी सकता है; खून नहीं।'

वह व्यापारी रायचन्दभाईके चरणोंमें पड़ गया और उसके मुखसे निकल पड़ा—'आप मनुष्य नहीं देवता हैं।'

छल-कपट, ठगी, झूठ और धोखेबाजीसे किसी भी प्रकार दूसरे मनुष्यकी बुरी परिस्थितिका लाभ उठानेके लिये आतुर आजका समाज इस महापुरुषके जीवन-प्रसङ्गसे प्रेरणा प्राप्त करे।

—मधुकान्त भट्ट

आस्तिकताका फल

१९४८ की बात है। मैं हाईस्कूलकी परीक्षामें प्रविष्ट हुआ था। इसके पूर्व मैंने कर्वीके एक संस्कृतविद्यालयमें अध्ययन करके व्याकरण मध्यमा उत्तीर्ण की थी। कुछ मित्रोंकी सलाहसे संस्कृतका अध्ययन स्थगित कर हाईस्कूलकी तैयारी करने लगा था। अबतक संस्कृतका छात्र होनेके कारण मैं गणितमें कमजोर था; क्योंकि संस्कृतके विद्यालयोंमें उन दिनों गणितके अध्यापनकी व्यवस्था नहीं थी। गणितेतर विषयोंमें मुझे काफी संतोष था। सभी प्रश्नपत्रोंका मैंने संतोषजनक उत्तर लिखा; पर गणितके प्रश्नपत्रमें वही हुआ जिसकी मुझे आशङ्का थी। अन्यमनस्कताके साथ मैं परीक्षाभवनसे बाहर निकला। अन्य सहपाठियोंसे प्रश्नपत्र मिलाया। ५० अङ्कोंमें केवल ११ अङ्कोंके प्रश्नोंका ही शुद्ध उत्तर लिख पाया था। हृदय धक् हो गया। सारा उत्साह, सारी प्रसन्नता काफूर हो गयी। अनुत्तीर्ण हो जानेकी चिन्ताने मेरे मस्तिष्कमें अपना स्थायी स्थान बना लिया। दुःख और निराशा लेकर मैं घर लौट आया।

हमारे गाँवमें एक वृद्ध साधु रहते थे। वे परम भगवद्भक्त तथा वीतराग महात्मा थे। महात्माजी हमारे गाँवमें नदीके तटपर एक वटवृक्षके नीचे वर्षोंसे रहते थे। मैं जब भी छुट्टियोंमें कर्वीसे गाँव जाता था, महात्माजीके दर्शन करने अवश्य जाता था। महात्माजी

भगवत्कथाके साथ-साथ देशकी आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक दशाओंको सुननेमें भी बड़ी अभिरुचि रखते थे। वे विशेष पढ़े-लिखे न थे, पर महात्मा गाँधी और पं० जवाहरलाल नेहरूके बारेमें उन्हें काफी ज्ञान था और इनकी चर्चा वे बड़े प्रेमसे सुनते थे। मैं जब भी जाता था, महात्माजीको अखबारी दुनियाका हाल बताकर उन्हें रामायण या अन्य धार्मिक ग्रन्थोंकी कथाएँ सुनाया करता था। इससे महात्माजी मेरे प्रति बड़ी कृपा रखते थे।

उस दिन मैं बड़ी ही आशा तथा विश्वासके साथ महात्माजीके पास पहुँचा और प्रणाम करके चरणोंके नीचे बैठ गया। उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया और मेरी परीक्षाके बारेमें पूछा। मैंने गणितका प्रश्नपत्र बिगड़ जानेकी बात उनको बतायी और फिर कहा—'महाराज! यदि मैं अनुत्तीर्ण हुआ तो मेरा भविष्य अन्धकारमय हो जायगा।' महात्माजी कुछ क्षणोंतक मौन रहे, फिर बोले—'जाओ, भगवान् शंकरजीपर १०४ कलशी जल चढ़ाओ, उत्तीर्ण हो जाओगे।' मैंने दीनतासे कहा—'महाराज! मेरा उत्तीर्ण होना बड़ा कठिन है। मैं ५० अङ्कोंमें केवल ११ अङ्कोंके उत्तर ही शुद्ध लिख पाया हूँ और उत्तीर्ण होनेके लिये १७ अङ्कका आना परमावश्यक है।' इसपर महात्माजीने कुछ उत्तेजित होकर जोरसे मानसकी अर्धालीका यह अंश सुनाया—'भाविहु मेटि सकहिं त्रिपुरारी' और कहा—'जाओ, शंकरजीके ऊपर जल चढ़ाओ।'

आदेशानुसार स्नान करके मैंने शंकरजीकी प्रतिमापर १०४ कलशी जल नदीसे लाकर चढ़ाया। इसके बाद मुझे ऐसा दृढ़ विश्वास हो गया कि मैं अब अवश्य सफल हो जाऊँगा।

नियमानुसार परीक्षाफल प्रकाशित होनेका समय आया। परीक्षाफल-प्रकाशनकी तिथि सुनकर मेरा हृदय धक्-धक् करने लगा। परीक्षाफल ज्ञात करनेके लिये गाँवसे कर्वी जानेका मेरा साहस न हुआ। संयोगवश कर्वीका एक व्यक्ति शीघ्र ही अपने एक सम्बन्धीसे मिलने हमारे गाँव आ पहुँचा। उसने बताया 'स्कूलके छात्र कह रहे

थे। कि तुम उत्तीर्ण हो गये हो।' सुनकर मेरी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। मैं तुरंत दौड़ा महात्माजीके पास गया और चरणोंमें जा गिरा। सारा हाल बताया और फिर उसी दिन कर्वीको भागा आया। समाचारपत्र देखा, मैं द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण था।

तबसे महात्माजीके बताये इस सहज अस्त्रका उपयोग आवश्यकता पड़नेपर एम्० ए० तककी परीक्षाओंमें मैंने किया और सदैव सफल रहा। आज भी जब मैं किसी उलझन या संकटमें पड़ जाता हूँ, तब आशुतोष शंकरभगवान्को मुफ्तके थोड़े-से जलसे फुसला लेता हूँ।

—बाबूलाल गर्ग, एम्० ए० शास्त्री

नीयतमें भेद

बिहारीलाल और रामजीदास दो सगे भाई थे। बिहारीलाल बड़े थे, रामजीदास छोटे। दोनोंके पत्नियाँ थीं और दोनोंके ही दो-दो लड़के थे। परस्पर बहुत प्रेम था। श्रीबिहारीलाल ही बड़े होनेके नाते घरके मालिक थे। चारों बच्चोंको वे ही सँभालते; उनके लिये कपड़े बनवाने, फल-मिठाई लाने, पढ़ाईकी व्यवस्था करने आदि सब कार्य बड़ी दिलचस्पीसे बिहारीलाल करते। घरकी तथा बच्चोंकी ओरसे रामजीदास निश्चिन्त थे। बिहारीलालके दोनों बालकोंका जैसा पिताजीपर अधिकार था, ठीक वैसा ही रामजीदासके दोनों बालकोंका ताऊजीपर। बिहारीलाल भी किसी प्रकारका भी भेदका बर्ताव कभी नहीं करते। चारों बच्चोंके लिये सब चीजें समान आतीं। घरमें रामजीदासकी पत्नीके लिये भी, जो कुछ आवश्यक होता, जेठजी ही सब करते और उनके किसी बर्तावसे रामजीदासकी पत्नीको कभी कोई शिकायत नहीं हुई। रामजीदास दुकानका काम देखते, घरकी सारी देखभाल बिहारीलाल करते।

एक दिन छुट्टी थी, दूकानें बंद थीं। अतएव रामजीदास घरपर ही थे। मकानके बाहरके आँगनमें एक कुर्सीपर बैठे कुछ पढ़ रहे थे। चारों बालक खेल रहे थे। बिहारीलाल बच्चोंके लिये फलादि लाने बाजार गये थे। बच्चे बिहारीलालजीकी बाट देख रहे थे, क्या फल लाते हैं। थोड़ी ही देरमें बिहारीलालजी लौट आये। वे एक झोलेमें आठ केले और आठ आम लाये थे। उनके आते ही रामजीदास बड़े भाईके सम्मानार्थ कुर्सीसे उठकर एक ओर खड़े हो गये। बिहारीलालजी कुर्सीपर बैठ गये। चारों बालक खेलना छोड़कर फलोंके लिये बिहारीलालजीके समीप आकर फल माँगने लगे। रामजीदास बच्चोंकी उत्सुकता देखने लगे। बिहारीलालका उस ओर कोई ध्यान नहीं था। वे झोलेमेंसे फल निकाल रहे थे बच्चोंको देनेके लिये। केले तो एक-से थे। बिहारीलालने झोलेसे निकालकर दो-दो केले चारों बालकोंको दे

दिये। बचे आठ आम। आमोंमें चार कुछ घटिया तथा छोटे थे। चार उनसे कुछ बढ़िया जातिके तथा बड़े थे। बिहारीलालने झोलेसे आम निकाले। चारों बच्चे हाथ फैलाये खड़े थे। बिहारीलालके बालकोंके नाम थे—मदन, विजय (मटकू) और रामजीदासके लड़कोंके नाम थे—मोहन तथा केसू। बिहारीलालके चार आम एक हाथमें थे, चार दूसरे हाथमें। बच्चे निर्दोषभावसे लपके। मदन तथा मटकू जिस हाथकी ओर लपके उसमें घटिया तथा छोटे आम थे। मदन तथा मटकूको झटककर बिहारीलाल अलग हटाने लगे। वे नहीं हटे, तब दूसरे बढ़िया बड़े आमवाले हाथको बिहारीलाल मोहन तथा केसूकी ओर हटाकर यों घुमाया कि जिससे मोहन और केसू उन आमोंको न ले सके और घटिया आमवाले हाथको उधर घुमाकर मोहन-केसूको वे आम दे दिये और मदन-मटकूको बढ़ियावाले दे दिये।

रामजीदास बड़े कौतूहलसे सर्वथा निर्दोषभावसे बच्चोंका खेल देख रहे थे, परन्तु बड़े भाई बिहारीलालकी इस चीजको देखकर रामजीदासके मनमें बड़ा क्षोभ हो गया। घटियावाले आम स्वाभाविक ही उसके बच्चे—मोहन-केसूको दिये गये होते और बढ़ियावाले भी सहज ही मदन-मटकूको मिल जाते तो जरा भी बुरी बात नहीं थी। दोनों हाथोंमें सहजरूपमें लिये हुए आम थे; जिस ओर जो बच्चे आये उन्हींको वे मिल गये। पर बिहारीलालकी आज यह स्पष्ट चेष्टा हुई कि बढ़ियावाले आमके हाथको उन्होंने जान-बूझकर मोहन-केसूके सामनेसे हटाकर अपने बच्चे मदन-मटकूको वे आम दिये और मोहन-केसूको घटिया आमवाला हाथ उनकी ओर घुमाकर वे आम दिये। रामजीदासके बात ठीक समझमें आ गयी कि आज भाई बिहारीलालके मनमें भेद-बुद्धि आ गयी। आम मामूली चीज है, थोड़े-से पैसोंके हैं—इससे मतलब नहीं; असल बात है भेद-बुद्धिकी।

लड़के तो आम लेकर चले गये। उन्हें तो घटिया-बढ़ियाका कोई ज्ञान था नहीं। अवश्य ही आज कुछ नयी-सी बात तो बच्चोंको

लगी। मदन-मटकू समझ नहीं सके कि बाबूजीने—हम जो आम ले रहे थे, वे न देकर दूसरे क्यों दिये। इसी प्रकार मोहन-केसूको भी कुछ अचरज-सा लगा। पर उन निर्दोष बच्चोंके मनमें किसी पाप-भावनाका ध्यान नहीं आया। किन्तु रामजीदासके मनमें दूसरा भाव आ गया और बच्चोंके अलग चले जानेके बाद रामजीदासने आकर भाई बिहारीलालसे कहा—'भाईजी! हमें आजसे बँटवारा करके अलग-अलग हो जाना है और इसमें कोई कठिनाई नहीं होगी; क्योंकि आप अपनी इच्छासे मुझे जो कुछ देंगे, वही मुझे हृदयसे स्वीकार होगा।' रामजीदासकी बात सुनकर बिहारीलाल चौंके। उन्हें अपनी नीयतकी बात तो याद आ गयी; पर वे समझ रहे थे कि रामजीदासने क्यों मेरी ओर देखा होगा और क्यों इसे कोई सन्देह ही हुआ होगा।' बिहारीलाल बोले—'भैया! क्या बात हो गयी, तुम ऐसा क्यों कह रहे हो?' रामजीदासने नम्रतासे स्पष्ट कहा—'भाईजी! आज एक ऐसी अनहोनी बात मैंने देखी, जिसकी मेरे मनमें कल्पना ही नहीं थी। बच्चोंको आम देनेके समय मेरी नजर उधर चली गयी। बात मामूली थी; पर मैंने समझ लिया कि आज भाईजीके मनमें अपने बच्चों तथा मेरे बच्चोंमें भेद आ गया और जब भेद आ गया, तब फिर साथ रहनेमें कुशल नहीं है। इसीसे मैंने अलग होनेकी बात कही है।'

बिहारीलालकी आँखोंमें आँसू आ गये, उन्होंने कहा—'सच्ची बात है, भैया! मेरी बुद्धि मारी गयी थी। मैंने जो पाप कभी नहीं किया, वह आज कर बैठा! मेरी बुद्धिमें भेद आ गया। मेरे मनने कहा—-बढ़िया आम मदन-मटकूको दे दो। मैंने मनकी यह कुशिक्षा मान ली। भैया! इसका दण्ड मुझे भगवान् देंगे। तुमसे क्षमा माँगने लायक तो मैं रहा नहीं। तुम तो मुझपर विश्वास करके अपने स्त्री-बच्चोंकी सारी देख-रेखका भार मुझे देकर निश्चिन्त हो गये थे। मैंने बुरी नीयतसे तुम्हारे साथ घोर विश्वासघात किया। यह छोटा पाप नहीं है। अवश्य ही अलग होनेपर मेरे प्राण भी देहसे अलग हो जायँगे, पर इस पापका तो यही प्रायश्चित्त है।' यों कहकर बिहारीलाल

जोर-जोरसे रोने लगे। बिहारीलालके सच्चे पश्चात्तापयुक्त आँसुओंकी धाराका रामजीदासके हृदयपर विलक्षण प्रभाव पड़ा। उसके मनका सारा क्षोभ बह गया। उसने बड़े भाईके पैर पकड़ लिये तथा रोकर क्षमा माँगी। इतनेमें बच्चे भी वहाँ आ गये। वे आश्चर्यसे देख रहे थे—आज ताऊजी और चाचाजी क्यों रो रहे हैं? बिहारीलालकी स्त्री वहाँ आ गयी। रामजीदासकी स्त्री भी दूर खड़ी होकर सब देखने-सुनने लगी। दोनों ही बड़ी भली स्त्रियाँ थीं। सब बातें जानकर दोनोंको बड़ा दुःख हुआ। वे भी रो पड़ीं। पवित्र आँसुओंने सदाके लिये मलिन भावोंका मूलोच्छेद ही कर दिया। सारा परिवार परम सुखी हो गया। यह बात सिद्ध हो गयी कि सुख त्यागमें है, स्वार्थमें नहीं।

—गोविन्दराम शर्मा

नास्तिकता और अनास्तिकताका फल

यह घटना आजसे कुछ वर्ष पूर्वकी है। उन दिनों मैं प्रतिवर्ष हिंदी, संस्कृत तथा अंग्रेजीकी साथ-साथ कई परीक्षाएँ देता और प्रत्येकमें ही सफलता प्राप्त करता रहा। इस बार-बारकी सफलतासे मुझमें अहंवृत्ति जाग उठी और मेरी यह धारणा बन गयी कि जो कुछ मनुष्यको मिलता है; उसमें पुरुषार्थ कारण होता है, दैव नहीं। मैं भगवान् श्रीकृष्णका उपासक हूँ और एक लघु प्रतिमा, जो उन दिनों भी मेरे पास थी और आज भी है, उसकी पूजा किया करता था। मेरी अहंताने धीरे-धीरे मुझे उस पूजासे विरत किया और मैं पुरुषार्थपर और विश्वास करता हुआ अध्ययन करने लगा। सन् १९४९ में शास्त्रीका द्वितीय वर्ष दे रहा था, इससे पूर्वके दोनों वर्षोंमें मेरी प्रथम श्रेणी आयी थी और उस वर्ष मैंने अथसे इतितक ग्रन्थोंको पढ़ा और कण्ठ कर लिया। मेरे लिये यह सुलभ था कि मैं सोनेकी स्थितिसे जागकर किसी भी स्थलकी किन्हीं भी पंक्तियोंकी टीका-टिप्पणी कर सकता था। भगवान्‌के प्रति मेरी धारणा कुछ शिथिल हो गयी थी, शायद यह उसीका परिणाम था—मैं परीक्षामें बैठा, पर अनुत्तीर्ण हो गया। अपने साथियोंमें और विद्यालयमें मेरे लिये जीवन-मरणका प्रश्न बन गया। सारा अहंकार, जो मुझमें कुछ दिनोंसे जग रहा था, चूर-चूर हो गया। प्रश्न केवल यही था, यह सब हुआ कैसे? आप विश्वास करेंगे, सात दिनतक मैं अपने आराध्य प्रभुके सामने रोता हुआ समाधान पूछने लगा। मानसिक चिन्ताने दुर्बल तो बना ही दिया था। आठवें दिन मुझे स्वप्न हुआ और स्वप्नमें मैंने जो कुछ देखा आज भी उसे प्रभुकी कृपा समझ मैं अपनेको धन्य मानता हूँ। मैंने स्वप्नमें देखा परीक्षाकी कापीको कोई मेरे सामने लाया और एक-एक पृष्ठ पलटकर मेरी अशुद्धियोंको और मेरे प्राप्ताङ्कोंको कोई गिना रहा है। लगभग एक-डेढ़ मास बाद रजिस्ट्रार-आफिससे मेरे प्राप्ताङ्क मिले और वे वही थे, जिन्हें मैंने स्वप्नमें कापीपर गिने थे—पूरे सोलह, जब

****

कि सत्रहमें उत्तीर्ण होते हैं। अनन्तर भगवान्‌ने धैर्य दिया और उनके प्रसादसे ही आज मैं एक विश्वविद्यालयमें प्राध्यापक बनकर कार्य कर रहा हूँ। आप आश्चर्य करेंगे, बचपनमें ही हम पितृविहीन हो गये, भावी जीवनका कोई लता-पता भी नहीं था, फिर भी भगवान्‌की प्रेरणासे न जाने कितनी ज्ञात-अज्ञात सहायताएँ हमें मिलीं, जिनसे मैंने बहुत सुखपूर्वक अपने उन विगत दिनोंको बिताया। मेरी तो आज यही धारणा है कि मेरी उस क्षणिक नास्तिकताने मुझे जीवनमें असफलताका मुँह दिखाया और मेरी प्रगाढ़ आस्तिकताने आज मुझे इस स्थलपर ला बैठाया।

—वागीशदत्त पाण्डेय, एम्० ए० (हिंदी-संस्कृत), पी-एच्० डी०, साहित्याचार्य

★★★

कर्तव्य-पालन

संध्याका समय था। रेलगाड़ी पूनासे बम्बई जा रही थी। गाड़ीमें अधिक भीड़ नहीं थी। लोग आरामसे यात्रा कर रहे थे। पहला दर्जा तो बिलकुल खाली था, सिर्फ एक कालेजकी युवती थी। कालेजकी छुट्टियोंमें वह बम्बई जा रही थी। उसी गाड़ीसे मेरा मित्र भी बम्बई जा रहा था। वह रेलवे पुलिसमें था।

धीरे-धीरे अँधेरा होने लगा। गाड़ी तेजीसे चल रही थी। इतनेमें बगलके डिब्बेसे एक दर्दभरी चिल्लाहटकी आवाज आयी! पर शायद उस ओर किसीका ध्यान नहीं गया। सिर्फ मेरे उस पुलिस मित्रने उसे सुना और वह सोचने लगा कि जरूर पहले दर्जेमें कुछ गड़बड़ी होगी।

तुरंत ही वह गाड़ीके दरवाजेपर आ गया। सिग्नल न मिलनेके कारण एक-दो मिनिटके लिये ही गाड़ी ठहरी। सिर्फ इतना ही मौका उसको मिला, वह झटसे गाड़ीसे कूद पड़ा और अगले पहले दर्जेके डिब्बेमें चढ़ गया।

वहाँकी हालत देखने, सोचने या सुनने लायक नहीं थी। उसमें एक अकेली युवती थी और दो गुंडे थे। युवतीका मुँह बंद किया हुआ था, जिससे वह चिल्ला न सके। मार-पीट और कीमती चीजें छीननेका काम चालू था। इस करुणापूर्ण और भयानक दृश्यको देखकर मेरे मित्रकी आँखें लाल हो गयीं। उसने तुरंत ही दोनों गुंडोंपर हमला किया। उन लुटरोंके पास हथियार थे। इसके पास सिर्फ एक डंडा था। पर अपनी जानको जोखिममें डालकर मेरा मित्र उनसे भिड़ गया। वहाँ एक छोटी-सी लड़ाई हो गयी। लुटेरोंके हथियार मेरे मित्रने छीन लिये। पर उसको बहुत बुरी मार और तकलीफ सहनी पड़ी। आखिर लुटेरोंको मार खाकर भागना पड़ा। इस छोटी-सी लड़ाईमें मेरे मित्रकी जीत हो गयी। वह महिला डरके मारे काँपती हुई इस दृश्यको देख रही थी। वह बोल नहीं सकती थी। मेरे मित्रकी जीतको देखकर उसमें कुछ धीरज आया। वह समझी कि इन बहादुर पुरुषके रूपमें खुद भगवान् ही मेरी सहायताके लिये आये हैं।

मेरे मित्रने उस युवतीको बम्बईमें उसके भाईके घरपर पहुँचाया। मेरे मित्रकी इस बहादुरीको देखकर अत्यन्त कृतज्ञ हुई वह महिला कुछ पुरस्कार दे रही थी, किंतु मेरे मित्रने लिया नहीं। केवल इतना ही कहा कि 'समझो, मेरी बड़ी बहनपर ऐसी विपत्ति पड़ती तो क्या मैं सहायता नहीं करता? इस अवस्थामें मदद करना मेरा कर्तव्य है। भगवान्‌ने मुझे उस समय ऐसी शक्ति दी कि मैं लुटेरोंका मुकाबला करके बहनकी जान बचा सका। यह सब भगवान्‌की कृपासे ही हुआ, मुझसे कुछ भी नहीं।'

बादमें मेरे घरपर आकर मित्रने मुझे यह दुर्घटना सुनायी। दुर्घटना सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ। मैंने भगवान्‌से केवल यही प्रार्थना की—'हे प्रभो! ऐसा टेढ़ा समय किसीपर न आने देना।'

मनुष्य जब इस दुनियामें सचाईके साथ सत्कार्य करता है तो टेढ़े समयपर खुद भगवान् ही किसी-न-किसी रूपमें उसकी सहायताके लिये आ खड़े होते हैं।

—वि० ग० ढमाले, ओतूर (पूना)

★★★

पहलेकी बात है कि मैं एक दिन बड़ा परेशान था। छोटे भाईकी स्त्री बीमार मृत्युसे लड़ रही थी। चार दिन बाद मेरी बहनकी शादी थी। रिश्तेदार आ गये थे। हम सबने मिलकर निश्चय किया कि सब रात्रि-जागरण करें और मिलकर परमपिता परमात्मासे प्रार्थना करें कि हमारी परेशानी दूर हो। जागरणके पश्चात् प्रातः आरती की गयी और मेरे मुँहसे स्वयं ही ये शब्द निकले कि 'यदि बहू भी बच जाय और शादी भी निर्विघ्न समाप्त हो जाय तो मैं प्रतिमास सालभरतक एक दिन गङ्गास्नान करूँगा।' बहूको इस कारण अस्पतालमें भर्ती करा दिया कि यदि मृत्यु होनी ही है तो अस्पतालमें ही हो और हम शादीकी तैयारीमें लग गये। परमात्माकी ऐसी कृपा हुई कि बहू ठीक होने लगी और शादीके दिन उसकी इच्छा हुई कि कोठीपर ले चलो—मैं तो वरको देखूँगी। वरको अस्पताल भेजा गया। बहूने उसके पैर पूजे और माला पहनायी। आठ दिनके भीतर शादी भी निर्विघ्न हो गयी और बहू भी अच्छी होकर अस्पतालसे घर लौट आयी।

हमारा परिवार आर्यसमाजी है। उसी वातावरणमें रहनेके कारण मुझे गङ्गाजीमें कोई श्रद्धा नहीं थी। परंतु अचानक मुँहसे उस दिन जागरणके पश्चात् सालभर प्रतिमास एक दिन गङ्गास्नान करनेकी बात न जाने कैसे स्वयं ही निकल गयी थी, अतः उसी निश्चयके बन्धनमें फँसकर मैंने प्रतिमास गङ्गास्नान एक दिन करना शुरू कर दिया। गङ्गाजीके किनारे कई महात्माओंके दर्शन हुए। मुझे गङ्गास्नान करनेमें बड़ा आनन्द आने लगा। प्रतिमास चारों ओरसे कुछ-न-कुछ शुभ समाचार आते रहे। तीन अमेरिकन साधुओंने और कई भारतवर्षके उच्चकोटिके महात्माओंने स्वयं कोठीपर पधारकर सेवकको अनुगृहीत किया। एक महात्मा 'ज्ञानेश्वरी' की पुस्तक मेरी मेजपर छोड़ गये। एक अमेरिकन महात्मा २१ दिन कोठीपर ठहरकर शिवलिङ्गकी मूर्ति मुझे दे गये। पूजाके कमरेमें एक महात्मा श्रीकृष्णका चित्र फ्रेम कराकर रख गये। इन सब बातोंसे और ज्ञानेश्वरीको पढ़ते-पढ़ते मैं एक मूर्तिपूजक बन गया। शङ्ख, कीर्तनकी खड़तालें, इकतारा, झाँझ

इत्यादि सभी चीजें मेरे पूजाके कमरेमें आ गयीं। पूजा करनेमें सेवकको बड़ा आनन्द आने लगा। प्रतिदिन गङ्गाजलका प्रातःकाल आचमन करनेके पश्चात् ही खाने-पीनेका संकल्प कर लिया। गङ्गाजलकी एक छोटी शीशी मैं सदा अपनी जेबमें रखने लगा। इस प्रकार १२ मास गङ्गास्नान करनेमें मुझे इतना आनन्द आया कि मैंने निश्चय किया कि अब भविष्यमें प्रतिमासका गङ्गास्नान करना जीवनभर जारी रखूँगा। बहुत-से अद्भुत चमत्कार हुए, पर उनका यहाँ वर्णन करना ठीक नहीं जान पड़ता।

यों ही पाँच वर्ष गङ्गास्नान करते बीत गये। फिर मेरी बड़ी पुत्र-वधू बहुत बीमार हुई। छः महीने उसे अस्पतालमें रखना पड़ा। खर्च भी बहुत हुआ। एक दिन डाक्टरनियोंने जवाब दे दिया कि अब इसके बचनेकी आशा नहीं। सभी रो रहे थे। मैं एक कोनेमें एक छोटी-सी चारपाईपर बैठा था। एक हाथमें गङ्गाजलकी शीशी—दूसरे हाथमें गीताका सबसे छोटा गुटका और माला। शरीर काँप रहा था—आँखोंसे अश्रुधारा बह रही थी। मेरे मुँहसे निकला—'भगवन्! आपकी इच्छा—बहू आपने ही दी थी। आप ले जाना चाहते हैं तो ले जाइये—मेरे कोई पाप होंगे, जिनका दण्ड मुझे मिल रहा है। पर इस बार आप इसपर कृपा करके जीवनदान दें—तो मैं अब प्रतिमास दो दिन गङ्गास्नान किया करूँगा।' उधर डाक्टरनियाँ उपचार कर रही थीं। आधे घंटे बाद बड़ी डाक्टरनीने आकर कहा कि बहू अब बच गयी—यकीन मानो मरेगी नहीं, पर पूरी ठीक होनेमें शायद कुछ महीने और लग जायँ। मुझे घरवालोंने चाय पिलायी, तब कहीं मैं होशमें आया। प्रभुका और गङ्गामाईका बहुत बड़ा धन्यवाद किया। बहूको घर लिवा लाये और उसकी दशा प्रतिदिन सुधरती गयी। इस समय उसके तीन बच्चे हैं। मुझे छः वर्षतक दमेकी बीमारी लग गयी। मैं सदा यह कहता रहता था कि जिस गलेमें प्रतिदिन गङ्गाजल जाता है, उस गलेमें दमेकी शिकायत नहीं रहेगी। किसी दिन गङ्गामाई कोई औषधि भेजेंगी और यह बीमारी चली जायगी। हुआ भी ऐसा

ही—अनूपशहरके पास गङ्गास्नान करनेके एक दिन बाद किसीने मुझे धोखेसे ठंढाईकी जगह भंग पिला दी। मैं १८ दिन सिरके दर्दमें पड़ा रहा। पर दमा ऐसे चला गया कि आजतक कभी भी उसका दौरा नहीं हुआ।

श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स, दिल्लीसे जब मैं १९५४ में रिटायर हुआ, तब मुझे युवराज श्रीकर्णसिंहजी सदरे रियासत जम्मू-कश्मीर अपने कॉमर्स कालेजका प्रिंसिपल बनाकर ले गये। कश्मीरसे प्रतिमास दो दिन गङ्गास्नान करने आना कठिन था। इसलिये पूज्य श्रीहरिबाबाजीके आज्ञानुसार मैंने प्रतिमास तीन दिनके हिसाबसे वर्षमें ३६ दिन गङ्गास्नान तीन महीनोंकी छुट्टियोंमें करनेका निश्चय किया और पाँच वर्ष ऐसा ही करता रहा और वहीं ३६ दिन गङ्गाके किनारे रहकर आनन्द लेता रहा। कश्मीरसे रिटायर होनेपर मेरी आयु ६५ वर्षकी हो गयी। तब फिर श्रीहरिबाबाजीके आज्ञानुसार यह नियम लिया कि प्रतिवर्ष १ दिन और अधिक गङ्गास्नानको बढ़ाता रहूँगा। इस १९६३ ई० में ४१ दिन गङ्गास्नान करूँगा, गङ्गामाई सब निभा देगी।

परिवारमें जब कोई बाहर जाता है, गङ्गाजलकी शीशी अपने साथ रखता है। मेरा छोटा भाई डॉ० आनन्दस्वरूप शर्मा बुलन्दशहरमें है—उसके लड़कियाँ थीं—लड़का नहीं था। आर्यसमाजके मन्त्री होनेके नाते उसे गङ्गाजीमें श्रद्धा नहीं थी। पर मेरे कहनेपर एक वर्षतक प्रतिमास गङ्गास्नान करनेपर गङ्गामाईकी कृपासे उसे पुत्ररत्न प्राप्त हुआ, जो आजकल लन्दनमें डाक्टरी पढ़ रहा है, इसी प्रकार मेरे एक करीबी रिश्तेदार—पं० परमानन्द बेकल एक मुकदमेमें फँस गये—जीतनेकी कोई आशा नहीं थी। वे ज्योतिषी थे। मैंने उनसे कहा कि जबतक मुकदमा चले, प्रतिमास गङ्गास्नान करते रहो तो मेरा पूर्ण विश्वास है कि तुम्हारी जीत होगी। तीन वर्ष मुकदमा चला, पर अन्तमें उनकी जीत हुई। जबतक जीवित रहे प्रतिमास गङ्गास्नान करते रहे।

मुझे जब कोई परेशानी हुई या नौकरीके सम्बन्धकी तरक्की इत्यादि और दूसरी इच्छाएँ हुईं, तब मैं लिखकर अपनी अर्जीकी नकल गंगाजीमें

डाल देता था। सच बात तो यह है कि जो कुछ भी मैंने गङ्गामाईसे माँगा, वह मुझे तुरंत ही मिला। अब मैं ६९ वें वर्षमें चल रहा हूँ। प्रभुसे प्रार्थना है कि गङ्गामाई इसी प्रकार हमारे देशपर अमृतकी वर्षा करके सबको सुखी करती रहें। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥
येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥
(७ । २१, ९ । २३)

श्रीगङ्गामाता! सबका उद्धार कर दे—दुखिया संसारको तू सुखिया संसार बना दे।

—मदनलाल शाण्डिल्य, एम्० ए०, बी० कॉम०, एल्-एल्० बी०

★★★

बुरेमें भी भलाई तथा परिवर्तन

आजसे दस वर्ष पहलेकी बात है। कच्छसे सर्वथा अपरिचित मैं बरंडीसे कोटडा जानेके लिये घरसे निकला। सलाह ली—किस रास्ते जाना ठीक है? मैं बरंडीसे बींझाण बैलगाड़ीमें आया। दूरसे आती हुई बसको देखकर गाड़ीवालेने कहा—'इस बसपर सवार हो जाओ, यह आपको कोटडा पहुँचा देगी।' मैंने उतरकर उस बसमें खड़े रहनेकी जगह प्राप्त कर ली। पाँच-सात मील आगे निकलनेपर कंडक्टर मेरे पास आया मैंने पैसे देकर कहा—'एक टिकट कोटडा।' वह क्षणभर मेरी ओर देखकर बोला—'यह बस कोटडा नहीं जाती। जान पड़ता है आपको वहाँकी जानकारी नहीं है। अगले स्टापपर उतर जाइयेगा। वहाँसे बायीं तरफ एक पगडंडी मिलेगी। लगभग डेढ़ मीलपर रोहा गाँव है। वहाँसे रातको नौ बजे कोटडा जानेवाली बस मिलेगी।

बुगचा उठाकर मैं उतरा, सँकड़ी-सी पगडंडीसे आगे बढ़ा। सूर्यदेव तो कभीके विदा ले चुके थे। एकाध फर्लांग आगे बढ़ा होऊँगा कि पीछे आहट-सी सुनायी दी, मैंने चौंककर पीछेकी ओर देखा। कोई काली छाया मेरी ओर बढ़ रही थी। ईश्वरका स्मरण करता हुआ मैं आगे बढ़ा कि दो-ही-तीन मिनटमें वह छाया मेरे बगलमें आ पहुँची। मेरा हृदय काँप गया। एक लंबा पूरा पुरुष, बड़ी-बड़ी मूछें, सिरपर बड़ा पगड़ और पट्टेसे बँधी बंदूक देखकर मैं तो मुर्दा-सा हो गया। मेरे समीप आकर उसने कहा—'क्यों महाशय! कहाँ जाना है?'

डरके मारे मैं उत्तर नहीं दे सका। उसने फिर पूछा। मैंने शुरूसे अबतककी बात सुना दी।

'तुम थके हुए जान पड़ते हो। लाओ यह बुगचा मैं ले चलूँ।' नहीं····नहीं····मैं बिलकुल थका नहीं हूँ।' सारी हिम्मत बटोरकर मैं मुश्किलसे इतना बोल पाया। मेरी आवाजसे उसने पहचान लिया कि मैं डर गया हूँ, वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। नीरव रात्रिमें उस हँसीने मुझे और भी डरा दिया।

'कठिनाईमें मदद करना हम गाँववालोंको आता है, आप कहो तो

आपको भी उठाकर ले चलूँ,' उसने कहा।

मेरी समझमें नहीं आया कि मैं इसका क्या उत्तर दूँ और मैं उसके पीछे-पीछे घसिटता चला। बुगचा अब उसके हाथमें था। कितने ही विचार मेरे मस्तकमें भर गये। मैं विवश हो गया। कोई गाँव नहीं आया। विपत्तिमें भगवान् याद आया करते हैं। दूरसे मन्दिरकी झाँझ-घण्टा सुनायी दी। इस ध्वनिने मेरे अंदर एक अजब श्रद्धा उत्पन्न कर दी—भगवान्में।

बुगचा मेरे हाथमें देते हुए उस पुरुषने कहा—'लो, यह रोहा आ गया। अब मैं जा रहा हूँ। मुझे यहाँ लोग रतनजीके नामसे पहचानते हैं।'

मैंने स्वीकृतिमें सिर हिला दिया। खेतोंमें होता हुआ वह अदृश्य हो गया, मैंने गाँवमें प्रवेश किया। बस आनेमें कुछ देर थी। कितने ही लोग वहाँ जमीनपर बैठे थे। मैं उनकी ओर बढ़ा। उनको पता लगा कि मैं डेढ़ मील सुनसान रास्तेसे आया हूँ। तो एक युवकने कटाक्ष किया—'हमने तो सुन रखा था कि शहरके लोग डरपोक होते हैं और आप इस अँधेरेमें अकेले आ गये।'

डेढ़ मीलतक मेरे साथ आनेवाले सज्जनके विषयमें मैंने बताया। सब चुपचाप सुनते रहे। एकने पूछा—'क्या नाम था उनका? और 'रतनजी' सुनते ही सब लोग बिना ही कुछ कहे उठकर चल दिये। उनका यह काम मेरी समझमें नहीं आया। बस आयी, कंडक्टरसे पूछकर मैं बसमें जा बैठा। पास बैठे हुए मुसाफिरको कदाचित् रतनजीके बारेमें कोई जानकारी हो, मैंने उनसे पूछा—'क्यों भाई! यह रतनजी कौन हैं?'

मेरी ओर देखकर उसने मुँह फेर लिया। मैंने फिर पूछा, तब उसने कहा—'आप उसे नहीं जानते ? आश्चर्य है। वह यहाँका प्रसिद्ध डाकू है। आप कहीं उसे देख लो तो तुरंत प्राण निकल जायँ—ऐसा भयानक है। अच्छे-अच्छे पुलिसवाले उससे डरते हैं।' बड़ी देरसे रात्रिको मैं कोटडा पहुँचा , तब कहीं जीव अपनी जगहपर आया।

अबसे दो वर्ष पहले बम्बईमें एक विवाहमें अचानक रतनजी मिले। पर इस समय वे एक डाकू नहीं, एक प्रतिष्ठित पुरुषके रूपमें विवाहमें निमन्त्रित थे। मुझे नहीं पहचान सके। मैंने पहचान बतायी। मुझको हृदयसे लगा लिया। 'क्यों आज तो वह डर नहीं लगता है न? अब मैं एक किसान बन गया हूँ और किये पापोंका प्रायश्चित्त करनेके प्रयत्नमें लगा हूँ।'

मैं मनमें सोचने लगा—ऐसा कोई मङ्गल क्षण आता है, जो मनुष्यको विषसे हटाकर अमृतके समीप ले जाता है।

(अखण्ड आनन्द)

—मोतीलाल डी० सावला

दोनों सच्चे साबित हुए

मेरे पड़ोसमें मेरे मित्र डाक्टर साँईदासजी खन्ना रहते थे। करीब १५ वर्ष हुए उनका स्वर्गवास हो गया। उनकी बीमा करायी हुई थी; उसके करीब २७०० रु० डाक्टर साहबकी पत्नीको मिले। डाक्टरकी स्त्रीने ये रुपये वहाँके लब्धप्रतिष्ठ वकील साहब श्रीपरतापमलजी मेहताको जमा करनेके लिये दे दिये। वकील साहबने ये रुपये स्वयं नहीं रखकर यहाँकी एक फर्म श्रीशिवदास सिरेमलमें डाक्टर साहबकी स्त्रीके नामसे ही जमा करवा दिये। कुछ वर्षों बाद डाक्टर साहबकी पत्नीको रुपयोंकी जरूरत हुई और उन्होंने वकील साहबसे रुपये माँगे। वकील साहब इस बातको बिलकुल ही भूल गये कि उन्होंने ये रुपये श्रीशिवदास सिरेमलमें खन्नाजीकी स्त्रीके नामसे जमा करवा दिये थे। वकील साहबने बहियाँ देखीं, पर रुपये कहीं जमा नहीं मिले। वकील साहबने कहा कि 'रुपये तो आपके जमा नहीं हैं।' इसपर डाक्टर साहबकी पत्नीने कहा कि 'रुपये मैंने जरूर आपको दिये थे।' वकील साहबने सोचा ज्यादा तुल-तबीलमें जानेसे लोग समझेंगे कि एक विधवा स्त्रीकी रकम दबानेकी नीयतसे मुकर रहे हैं। चुपचाप २७०० रु० डाक्टर साहबकी पत्नीको दे दिये।

गत वर्ष श्रीशिवदास सिरेमलके हिस्सेदार अलग-अलग हुए और उन्होंने हिसाबके आँकड़ोंमें २७०० रु० के छः आने ब्याजसे प्रायः ४६०० रु० श्रीसाँईदासजी डाक्टर साहबकी पत्नीके नामसे जमा निकाले। डाक्टर साहबकी स्त्रीको सूचना दी गयी। उन्होंने कहा मैंने तो रुपये जमा नहीं कराये। फिर वकील साहबके पास गये तो अब उनको सब बातें याद आ गयीं कि ये रुपये तो वही हैं, जो बीमाके डाक्टर

साहबकी पत्नीने उन्हें दिये थे और उन्होंने डाक्टर साहबकी पत्नीके नामसे ही जमा करा दिये थे। डाक्टर साहबकी स्त्रीने वकील साहबसे कहा कि 'मेरे रुपये तो आपने दे दिये थे।' पर वकील साहबने कहा—'ये रुपये तो आपके ही हैं। इस विस्मृतिमें भी भगवान्‌का कुछ रहस्य है।' प्रसन्नतासे वकील साहबने पूरे रुपये डाक्टर साहबकी स्त्रीको दिला दिये । कहा—'प्रसन्नता इसी बातमें है कि मैं भी सच्चा था और डाक्टर साहबकी पत्नी भी सच्ची थीं। इसका भेद ईश्वरने चौदह वर्ष बाद खोला। ईश्वरकी लीला विचित्र है, सचाई प्रकट हुए बिना नहीं रहती।'

—हरषराज लोढ़ा

★★★

आत्माकी आवाज

१३ अप्रैल सन् १९६३ के दोपहरकी बात है। मैं 'कल्याण'का विशेषाङ्क पढ़ रहा था, उसमें बिलकुल लीन था। इसी समय अचानक मेरे अंदरसे एक आवाज आने लगी कि 'जरा बाहर चलो, जरा बाहर चलो!' पर मैंने इसपर कोई ध्यान नहीं दिया और पढ़नेमें ही लगा रहा। पर मुझे आत्मशान्ति नहीं हुई, बार-बार बाहर जानेकी मनमें आने लगी और मेरा मन पढ़नेसे उचट गया। मैं अपने कमरेसे बाहर आया, तो क्या देखता हूँ कि मेरा चार वर्षका छोटा भानजा बाहर खड़ा है, उसके हाथमें एक दियासलाई है। क्षणभरमें ही वहाँपर मुझे बगलमें बरामदेकी सीढ़ियोंपरसे 'चट, चट, चट' शब्द सुनायी दिये। शीघ्र ही उस ओर गया तो मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वहाँपर छः पिंडी घासकी एक किवाड़के सहारे रक्खी थीं और उनमें बहुत जोरकी आग लगी हुई थी। शायद बच्चेने दियासलाई जलाकर फेंक दी हो। उन पिंडियोंके सहारे उस किवाड़को भी आगने पकड़ लिया था और वह भी जलने लगा था।

मैंने शीघ्र ही जल लाकर उस अग्निको शान्त किया। कुछ हानि नहीं हुई थी, किंतु हो जाती। वह अग्नि तो शान्त हो गयी, किंतु मेरे मनमें बराबर 'जरा बाहर चलो' यह आवाज गूँज रही थी।

अब आप स्वयं ही अनुमान लगा सकते हैं कि यदि उस समय मैं उस आवाजकी ओर ध्यान न देता तो कितना भयानक परिणाम होता। इसलिये मनुष्यको हमेशा अपनी अन्तरात्मापर विश्वास रखना चाहिये। वह हमें सही तथा सच्चे मार्गपर ले जाती है। जब भी हम कोई कार्य करते हैं तब हमारे हृदयमें दो तरहकी भावना जाग्रत् होती है। पहली होती है, 'इसे करूँ' और दूसरी होती है 'न करूँ', इसी तरहसे 'मन' और 'आत्मा'में संघर्ष होता रहता है। यदि हम मनकी बात मान लेते हैं तो परिणाम अच्छा नहीं निकलता और यदि आत्माकी बातपर विश्वास करते हैं तो उसका परिणाम इस घटनाके अनुसार आपके समक्ष प्रस्तुत ही है।

—महेशचन्द मुग्दल

★★★

सद्व्यवहारका सुपरिणाम

हरजीवनदास और गोविन्ददास दो भाई थे। दोनों ही विवाहित थे। छोटा भाई कुछ भोला था। बड़ा भाई उसके साथ बड़े प्रेमका बर्ताव करता, पर कभी-कभी खीझ भी जाता। छोटे भाईकी स्त्री अपने पतिका अपमान देखकर दुःखी तो होती, पर कुछ बोलती नहीं। अपने पतिके भोलेपनपर उसका मन उदास रहता। उसकी जेठानीका स्वभाव इतना अच्छा था कि वह अपने पतिको समय-समयपर विनम्रतासे समझाया करती कि 'भाई भोला है तो क्या, है तो भाई ही न। आप उसपर नाराज न हुआ करें।' हरजीवनदास अपनी पत्नीके सद्भावपर मुस्करा देता।

एक दिन हरजीवनदास चार हीरेके कड़े लेकर आया—दो अपनी स्त्रीके लिये और दो छोटे भाईकी स्त्रीके लिये। उसने लाकर छोटे भाई गोविन्ददासको दो कड़े दे दिये और कहा—'अपनी पत्नीको दे देना।' उस दिन गोविन्ददास कुछ खीझमें था। इसलिये वह उन दोनों कड़ोंको फेंककर बोला—'या तो चारों कड़े लूँगा या एक भी नहीं।' बड़े भाईने प्रेमसे समझाया, पर वह समझा नहीं। तब बड़े भाईने जरा खीझकर कहा तो उसने उससे भी अधिक खोटी-खरी कही। हरजीवनदासके मुखसे अकस्मात् निकल गया कि 'इस तरह तुम्हारी शरारत नहीं चलेगी, अलग हो जाओ।' गोविन्ददासकी पत्नीको अपने स्वामीके व्यवहारपर दुःख हो रहा था, पर अब जेठके मुखसे अलग हो जानेकी बात सुनकर उसे अलग होनेकी जँच गयी। उसकी जेठानी हरजीवनदासकी पत्नी छतपर रसोईघरमें थी। उसे इन सब बातोंका कुछ पता नहीं था। गोविन्ददासकी पत्नी रोती हुई अपनी जेठानीके पास गयी और रोते-रोते बोली—'जेठजीने आज्ञा दे दी है। मैं आपकी आज्ञा लेने आयी हूँ। हम लोग जा रहे हैं।' वह सुनते ही हक्की-बक्की रह गयी। उसने नीचे आकर सब बातोंका पता लगाया और फिर उसने रोकर अपने पतिके पैर पकड़ लिये और कहा—'आप गोविन्ददास और उसकी पत्नीको अलग कर रहे हैं तो मुझे भी उनके साथ जाने दीजिये। मेरे कोई संतान नहीं है। मैंने छोटे-से देवर गोविन्ददासको

अपने पेटके बच्चेकी तरह पाला-पोसा है। इसकी बहूको मैं अपनी बेटी मानती हूँ। मैं इससे अलग नहीं रह सकती। आप हमलोगोंको अलग भेजकर अकेले कैसे रह सकेंगे? आप अपने इस भोले छोटे भाईको चारों कड़े दे देते तो क्या बिगड़ता। आखिर सभी सम्पत्ति है तो इन्हींकी न ! फिर भेदभाव क्यों ? मैं जानती हूँ—आपका हृदय भाईके प्रति स्नेहसे भरा है; पर आपका भोला यह भाई बड़े ही स्नेहसे पाला-पोसा गया है, यह आपकी स्नेहभरी खीझको न समझ सकता है और न सहन कर सकता है। इसे हृदयसे लगाइये और सबको सुखी कीजिये।'

हरजीवनदासका हृदय तो अच्छा था ही। पत्नीके इन शब्दोंने बड़ा अच्छा असर किया। उसने उठकर तुरंत छोटे भाईको हृदयसे लगा लिया। वह खीझता और बकता रहा। पर हरजीवनदास रोता और उसे पुचकारता रहा। गोविन्ददासका हृदय भी पलट गया। उस दिनसे घरमें सर्वत्र स्नेहकी सरिता बहने लगी। हरजीवनदासकी पत्नी यदि अपने पतिकी क्रोधाग्निमें जरा-सी आहुति डाल देती तो सारा घर भस्म हो जाता। पर उसने अपने हृदयके अमृतरसको आँसुओंकी धाराके रूपमें बहाकर उनके द्वारा बढ़ती हुई आगको सदाके लिये शान्त कर दिया। धन्य !

—श्रीदयालपतराम नटवरलाल

चेचकके प्रकोपसे बालकोंकी रक्षाका उपाय

संवत् २०१५ की बात है। चैत्रशुक्ला रामनवमीसे चैत्रशुक्ला पूर्णिमा तक भासू (जि० टोंक, राजस्थान) ग्राममें विश्वकल्याणार्थ 'विष्णुयाग' हुआ था। यह यज्ञ भासूकी जनताकी ओरसे किया गया था। इस यज्ञको करानेके लिये काशीके सुप्रसिद्ध विद्वान् याज्ञिकसम्राट पं० श्रीवेणीरामजी गौड़ वेदाचार्य आचार्यरूपमें पधारे थे। वेदाचार्यजी यज्ञ प्रारम्भ होनेके दो दिन पूर्व भासू पधार गये थे। हमलोगोंने वेदाचार्यजीसे निवेदन किया कि 'इधर आठ-दस दिनोंसे अचानक भासू तथा भासूके आस-पासके बीस-पचीस मीलतकके ग्रामोंमें चेचक (शीतला माता) का भयंकर प्रकोप हो गया है, जिससे भासू-जैसे छोटे-से ग्राममें प्रतिदिन एक माससे लेकर बारह वर्षतकके छोटे-छोटे बालक पचासकी संख्यातक मृत्युको प्राप्त हो रहे हैं। अतः यज्ञके प्रति हमलोगोंका जो उत्साह था, वह नष्ट हो गया और हमलोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे हैं, समझमें नहीं आता क्या करें?'

वेदाचार्यजीने बड़ी दृढ़तासे कहा—'यज्ञ प्रारम्भ होनेमें अभी दो दिन बाकी हैं, इसके पूर्व ही मैं रात्रिमें एक ऐसा अनुष्ठान कर देता हूँ, जिससे निश्चित ही चेचक (शीतला माता) का प्रकोप शान्त हो जायगा और बालकोंकी रक्षा होगी।' वेदाचार्यजीके कथनानुसार हमलोग अनुष्ठान करानेके लिये संनद्ध हो गये और हमलोगोंने पूजनादिकी सारी सामग्रीकी व्यवस्था कर दी। पश्चात् वेदाचार्यजीने भासू ग्रामके मध्यमें चौराहेपर रात्रिमें ८ से १० तक गणपत्यादिका पूजन कराकर दो विद्वान् अनुष्ठानी ब्राह्मणोंको अलग-अलग अनुष्ठान करनेके लिये नियुक्त कर दिया और उनसे इस बातपर विशेष जोर दिया कि 'दीपक जलाकर रात्रिभर एक आसनसे अनुष्ठान पूर्ण करना चाहिये, अन्यथा अनुष्ठानका फल नहीं होगा।' वेदाचार्यजीके आज्ञानुसार दोनों ब्राह्मणोंने सविधि अनुष्ठान रात्रिभर किया। प्रातःकाल होते ही श्रीवेदाचार्यजीके बतलाये हुए अनुष्ठानका तत्काल प्रत्यक्ष चमत्कार दिखायी दिया; जहाँ प्रतिदिन पचासतक संख्यामें

बालकोंकी मृत्यु होती थी, वहाँ अनुष्ठानके बाद प्रथम दिन केवल एक ही बालककी मृत्यु हुई, जो कई दिन पूर्वसे चेचककी बीमारीसे ग्रस्त था। दूसरे दिनसे चेचकके कारण किसी भी बालककी मृत्यु होनेका समाचार सुनायी नहीं दिया। श्रीवेदाचार्यजीके चमत्कारपूर्ण अनुष्ठानका प्रभाव केवल भासूमें ही नहीं, किंतु भासूके आस-पासके ग्रामोंमें भी पड़ा, जिस कारण सर्वत्र बालकोंकी सुरक्षा हुई। वेदाचार्यजीके चमत्कारपूर्ण अनुष्ठानकी चर्चा दूर-दूरतक फैल गयी। आज भी समय-समयपर वेदाचार्यजीके अनुष्ठानकी प्रशंसा धार्मिकवर्ग किया करते हैं।

चेचककी बीमारी शान्त हो जानेके कारण भासूके निवासियोंकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। वे सभी लोग अत्यन्त उत्साहके साथ अपने पूर्वसंकल्पित 'विष्णुयाग' की तैयारीमें लग गये। भगवत्कृपासे यज्ञ भी बड़े आनन्दके साथ परिपूर्ण हुआ। यज्ञकी समाप्तिके बाद जब वेदाचार्यजी काशी जानेके लिये तैयार हुए, तब मैंने उनसे श्रद्धापूर्वक पूछा कि 'महाराजजी! काशी जानेके पूर्व आप कृपाकर अपने उस अनुष्ठानको बतला दीजिये, जिससे बालकोंकी रक्षा हुई।' श्रीवेदाचार्यजीने कहा—'मैंने एक ब्राह्मणसे दुर्गा—

बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम्।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम्॥

—इस मन्त्रद्वारा दुर्गाका सम्पुटित पाठ कराया था और दूसरे ब्राह्मणसे शीतलाष्टकके—

शीतले त्वं जगन्माता शीतले त्वं जगत्पिता।
शीतले त्वं जगद्धात्री शीतलायै नमो नमः॥

—इस मन्त्रद्वारा दुर्गाका सम्पुटित पाठ कराया था। इन दोनों महामन्त्रोंकी शक्ति अपूर्व है। इन दोनों मन्त्रोंके द्वारा दुर्गाका सम्पुटित पाठ करनेसे चेचक (शीतला माता) का भयंकर-से-भयंकर प्रकोप तत्काल दूर हो जाता है और बालकोंकी अकाल मृत्युसे निश्चित ही रक्षा होती है।

वेदाचार्यजीके बतलाये हुए तात्कालिक लाभप्रद अनुष्ठानके प्रत्यक्ष चमत्कारको देखकर मैं दावेके साथ कह सकता हूँ कि चेचक (शीतला) की बीमारीको शान्त करनेके लिये वेदाचार्यजीके द्वारा निर्दिष्ट अनुष्ठानको यदि श्रद्धा और विश्वासके साथ किया जाय तो अवश्य ही लाभ हो सकता है—'श्रद्धया सत्यमाप्यते।'

यह सत्य घटना 'कल्याण' के प्रेमी पाठकोंके कल्याणार्थ प्रेषित है। कोई भी सज्जन चेचककी बीमारीको शान्त करनेके लिये उपर्युक्त लोकोपकारक अनुष्ठानका सदुपयोग कर सकते हैं।'

—बजरंगप्रसाद शर्मा, भासू (जि० टोंक)

★★★

सुवास रह गयी

तब मैं विवाह होनेपर पहले-पहल ही ससुराल आयी थी। छोटी-सी बहूको घरमें इधर-उधर फिरते देखकर बड़ोंकी आँखें शीतल होतीं और मेरे आनन्दोल्लासका पार नहीं रहता। स्वर्ग मेरा घर ही था। इतना होनेपर भी नववधूके आनन्दके पीछे नये लोगोंका और नये घरका डर मुझे खूब सताता। काम करते समय सदा यह लगता—कहीं भूल तो नहीं हो गयी?

बड़ी गरमीका दिन था। पास ही भड़-भड़ जलती हुई सिगड़ी रखी थी। गरम-गरम रोटियाँ बनाकर मैं सबको परस रही थी। पास रखी कटोरीमें घी खतम हो गया था। मैं बहुत उतावलीमें हाथ धोकर घी लेने गयी। आलमारीमेंसे घीका काँचका भाँड निकालकर जमीनपर रखने लगी तो मेरे गीले हाथोंमेंसे वह चिकना भाँड जमीनपर गिर पड़ा।

'हाय रे!'—छाती धोंकनी-सी धोंकने लगी और घी बहने लगा। भाँडके फूटनेकी आवाज सुनकर मेरी सासजी पूजाघरसे बाहर आयीं और उन्होंने वस्तुस्थितिका परिचय प्राप्त किया। पास आकर मेरी

पीठपर हाथ फिराते हुए उन्होंने कहा—'बहू बेटा! घबरा मत। जा शान्तिसे बैठ; मैं सब साफ किये देती हूँ।'

सहानुभूति और प्रेमभरी वाणीने मेरे हृदयमें एक ऐसा उत्पात मचाया कि मेरी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली, मानो मैंने बहुत बड़ा अपराध किया हो। मैं अपने कमरेमें जाकर सिसक-सिसककर रोने लगी।

सब सफाई हो गयी। काँच चुन लिये गये, जगह धो दी गयी और जैसे कुछ हुआ ही न हो, ऐसे घरमें सब कामकाज चलता रहा। किसीने, कभी किसी बातपर भी इस घटनाका इशारा करके मुझे नीचा दिखाने अथवा अपने महत्ता-प्रदर्शनका कोई प्रयत्न नहीं किया। घी तो बह गया, पर उसकी सुवास रह गयी।

इस बातको वर्षों बीत गये। मैं अब बहू न रहकर सास बन गयी हूँ, पर कैसी? इसे तो मेरी बहू ही बता सकती है।

—श्रीमती सुभद्रा मारफतिया

उस हाथ दे, इस हाथ ले

घटना कुछ वर्ष पुरानी है। मेरा घर जिला मेरठ, उत्तर प्रदेशमें है। मैं अवकाश लेकर ग्रीष्मकालमें घर गया हुआ था। वहाँपर श्रीउजागरमलजीने मेरे सामने आँखों देखी घटनाका वर्णन किया। घटना उन्हींके शब्दोंमें इस प्रकार है—

एक बार मुझे शामली जानेका अवसर प्राप्त हुआ। वहाँके लिये देहलीसे सहारनपुरतक बसें जाती हैं। वैसे तो गाड़ी भी जाती है, परंतु मैंने बसमें जाना ही अधिक अच्छा समझा। बस जब शामली बसस्टैंडपर खड़ी हुई तो वहाँ एक खरगोशका पीछा कुत्तेको करते पाया गया। वह बेचारा खरगोश कुत्तेके भयसे एक झाड़ीमें छिप गया। इस दृश्यको ड्राइवर तथा अन्य यात्रियोंने भी देखा। यात्रियोंने कहा कि भगवान्‌ने बच्चेको बचा लिया। इतना कहनेसे सरदार ड्राइवरको क्रोध आ गया और वह कहने लगा कि 'अभी तो भगवान्‌ने बचाया; अब देखें कौन-सा भगवान् इसकी रक्षा करता है।' इतना कहते हुए वह झाड़ीमेंसे बच्चेको पकड़ लाया और कृपाणसे मारने लगा। यात्रियोंने मना किया और मन-ही-मन भगवान्‌का स्मरण किया, परंतु जैसे ही उसने कृपाण बच्चेपर चलानी चाही कि भगवत्-कृपासे बच्चा हाथसे छूट गया और अपनी ही कृपाणसे उस ड्राइवरका अपना ही हाथ कट गया। वह खरगोश भाग चुका था। सभीको खुशी हुई और कहना पड़ा कि मारनेवालेसे बचानेवाला महान् है। उस ड्राइवरको अस्पताल ले जाया गया; परंतु देर हो जानेसे खून इतना बह गया था कि उसके दो-तीन घंटेमें ही प्राण-पखेरू उड़ गये। उस हाथ दे, इस हाथ ले।

—डॉ० रामकृष्ण अग्रवाल, एम्०ए० बी०एस०

सच्ची शिक्षिताका स्वरूप

मैंने एम्० ए० पास किया, उसके तीन वर्षके पहले ही मेरा विवाह देहातकी एक साधारण पढ़ी-लिखी लड़कीसे हो चुका था। मेरे चचेरे छोटे भाई रणजीतकी शादी, जो अभी बी० ए० के प्रथम वर्षमें था, गयी साल एक बी० ए० पास शहरी लड़कीसे हुई। यद्यपि मेरी पत्नी बड़ी सुशीला, आज्ञाकारिणी थी तथा घरका सब काम-काज बड़ी लगनसे करती थी एवं बड़े चावसे मेरी सेवा करना चाहती थी। वह कभी सामने नहीं बोलती। पर मेरे साथ घूमने जानेमें तथा सिनेमा आदि देखने जानेमें बहुत सकुचाती। न मेरे मित्रमण्डलमें होनेवाले भोज आदिमें जानेका उसका मन करता। यद्यपि मेरी बातको टालती नहीं, परंतु इससे उसका मन प्रसन्न नहीं रहता। मैं इसी कारण उसपर सदा झुंझलाया करता। उसके प्रति अनुचित शब्दोंका प्रयोग तथा अयुक्त बर्ताव भी कर बैठता। वह यह सब सहती। पर मैं उससे प्रायः नाराज ही रहा करता। कभी आदर और प्रेमसे उससे नहीं बोलता। इसका एक प्रधान कारण यह था कि यद्यपि मेरे छोटे भाईकी शिक्षिता पत्नी घरका काम करनेमें कभी उत्साह नहीं दिखाती। वह न पतिका कोई सेवा-सत्कार ही करती, उनसे खूब विवाद भी करती; तथापि वह थी बड़े फैशनसे रहनेवाली, बहुत चञ्चल स्वभावकी तथा चुलबुल प्रकृतिकी। वह मेरे भाईके मित्रोंका बड़े चावसे स्वागत करती, उन्हें भोजनादि कराती, उनसे विनोद भी करती और सिनेमा तथा पार्टियोंमें तो बड़े शौकसे स्वामीको उत्साहित करके ले जाती और स्वयं साथ रहती। मैं अपनी पत्नीसे भी ऐसे ही चुलबुलेपनकी चाह करता था और उसके पूरी न होनेपर निराश, उदास तथा क्षुब्ध होता था।

मेरी उदासी तथा क्षोभसे वह बेचारी भी उदास रहती, पर कभी उसने कोई शिकायत नहीं की। उसमें एक खूबी यह भी थी कि वह फैशनसे सदा दूर रहती, इससे उसकी आवश्यकता बहुत कम थी। वह कभी कुछ माँग करती ही नहीं। जैसा कपड़ा मिल गया, वैसा ही पहन लिया। यह उसका बड़ा गुण था, पर मेरी आँखें द्वेषबुद्धि होनेके

कारण इस गुणको भी उसका दोष—एक गँवारपन ही देखती थीं।

गरमीके दिन थे। छुट्टियोंमें मेरा भाई अपनी पत्नीके साथ पहाड़पर गया था। पर मैं घरपर ही था। ऐसी असभ्य पत्नीको लेकर पहाड़पर जानेवाले सभ्य मित्रोंमें अपनी हँसी कराने भला कैसे जाता। इससे कुढ़कर घरपर ही रह गया था। एक दिन अकस्मात् छोटे भाईकी पत्नीका तार मिला कि 'रणजीतको बुखार हो गया है। मेरा स्वास्थ्य भी ऐसा नहीं कि मैं काम कर सकूँ, अतएव सेवाके लिये आइये या किन्हींको भेजिये।' मैं बड़ी चिन्तामें पड़ा। तार दिया कि 'हमलोग शीघ्र आ रहे हैं, पर लिखो भाईका क्या हाल है और तुम्हें क्या बीमारी है?' उत्तरमें तीसरे दिन तार मिला कि 'रणजीतका बुखार उतर गया, कमजोरी है। मेरा स्वास्थ्य ठीक है। पर इस अवस्थामें मैं यहाँ नहीं रह सकती। मैं आज ही अपने नैहर जा रही हूँ। आप किसीको इनकी सेवा आदिके लिये भेज दीजिये।' तार पढ़कर मैं दंग रह गया। बहू क्यों नहीं रह सकती। जब भाईका बुखार उतर गया और उसका अपना भी स्वास्थ्य ठीक है; तब उसे वहाँ रहनेमें क्या अड़चन है?

सारी बातें सुनकर मेरी पत्नीने कहा—'हमलोगोंको जल्दी चलना चाहिये। समयपर ही सेवाकी आवश्यकता होती है।' हमलोग उसी दिन चल दिये और दूसरे दिन वहाँ पहुँच गये। बहू तबतक जा चुकी थी। पता लगा कि कमजोरीके कारण रणजीत बहूको साथ लेकर सिनेमा देखने नहीं जा सके, इसीसे वह नाराज होकर चली गयी। मेरी पत्नीने कहा—'अभी बच्ची है, माता-पिताके स्नेहसे पली है। उनकी याद आ गयी होगी। चली गयी तो क्या हुआ। हमलोग आ ही गये हैं।'

भाग्यकी बात है—दूसरे दिन मुझे बुखार हो गया। घरपर कोई नहीं था। इसलिये रणजीतको मैंने आदमी साथ देकर तीसरे दिन घर भेज दिया। हम दोनों वहाँ रह गये। मेरा ज्वर बढ़ता ही गया और वह १०४ तक पहुँच गया। शरीर जला जाता था। मेरी पत्नी बहुत पढ़ी-लिखी नहीं थी, पर वह तुरंत जाकर एक डाक्टरको लायी। इलाज शुरू हुआ। मेरे बड़े जोरकी चेचक निकल आयी। पंद्रह दिन

हो गये, मेरी कमजोरी बढ़ती ही गयी। पर इलाज बहुत ठीक चल रहा था। इस स्थितिमें मैंने जो कुछ देखा उससे मेरी आँखें खुल गयीं। मेरी उस देहाती पत्नीने अपनी नींद-भूखको बिलकुल ही भुला दिया। उसका देहातीपन भी विस्मृत हो गया। बड़ी ही दक्षताके साथ समयपर डाक्टरको बुलाना, दवा लाना, ठीक समयपर मुझे दवा देना, रातों जगकर मेरी सेवा करना—इसीमें उसने अपनेको पूरा-पूरा लगा दिया। ऊपरी काम-काजके लिये एक आदमी रख लिया। मेरे टट्टी-पेशाबके साफ करनेसे लेकर दवा-पथ्य आदिका सारा काम वह इस लगनसे करने लगी कि मैं देखकर दंग रह गया। उसकी सेवा-शुश्रूषाने मुझे बाईस दिनोंमें स्वस्थ कर दिया। ज्वर उतर गया। चेचकके सारे दाने सूखकर गिर गये। मुझे अन्नका पथ्य दे दिया गया। पर वह अब भी मशीनकी भाँति यथायोग्य अपने सब कलपुर्जोंको पूरा-पूरा लगाकर मेरी सेवा करती ही रही। उसकी सेवा देखकर मेरा मस्तक श्रद्धासे उसके प्रति नत हो गया।

एक दिन उसके मुँहपर मैंने उसकी सेवाके लिये कुछ बड़ाईके शब्द कह दिये। वह तो सुनकर रोने लगी। सिसकती हुई बोली—'मेरे भगवान् ! आप यह क्या कह रहे हैं। आपके मुँहसे मैं अपनी बड़ाई सुननेका यह पाप कैसे स्वीकार कर सकती हूँ। मेरे जीवनका कण-कण आपकी पदरजका सहज सेवक है। इसमें बड़ाईकी कौन-सी बात है। भगवान्‌ने कृपा करके मेरे सुहागकी रक्षा की। यह सब उनकी दयाका परिणाम है। मैं तो सदा ही नालायक हूँ। मेरा यह सौभाग्य है कि मेरे सुहागकी रक्षा करनेका कार्य स्वयं करके भी भगवान्‌ने मुझे अवसर दिया कि मेरे द्वारा होनेवाली अपने स्वार्थ-साधनकी भौंड़ी क्रियाको आपने स्वीकार कर लिया।'

मैं सुनकर गद्‌गद हो गया। मैं उस दिन यह समझ सका कि असली शिक्षा तो यही है जिससे शिक्षित होकर इस प्रकार मनुष्य अपनेको सर्वथा सेवामें समर्पण करके भी अभिमान नहीं करता और इसे भगवान्‌की कृपा तथा अपना सौभाग्य समझता है। धन्य है भारतीय नारीकी यह शिक्षा!

—नरेन्द्रकुमार

★★★

हृदयस्थ प्रभुके आज्ञापालनका चमत्कार

कुछ दिनों पूर्वकी बात है। एक बृहस्पतिवारको मैं और मेरे एक साथी शेरगाँवके ब्रह्मीभूत श्रीमत्स्वामी गजानन महाराजकी समाधिके दर्शनार्थ गये थे। बृहस्पतिवारको यहाँ यात्रियोंकी इतनी भीड़ होती है, मानो स्वामीके दर्शन-मधुपानके लिये अनन्त मधुमक्खियाँ एकत्र हुई हों। ऐसी स्थितिमें दर्शन होना बड़ा ही कठिन होता है। मन्दिराधिपतिके आज्ञानुसार सब दर्शनार्थी लोगोंको एक पंक्ति बनाकर खड़ा किया गया। पंक्तिमें हमारा स्थान बहुत ही पीछे था। हमलोगोंको समाधिके दर्शन संध्याके समय हुए। दर्शन करके गाँवको लौटना था और पैदल ही जानेका हमारा अटल प्रण था।

हमलोग चलकर दो-तीन मील ही बढ़े होंगे कि पीछेसे जूतोंकी आहट सुनायी दी। हमने पीछेकी ओर देखा तो काले रंगके तीन-चार भीमकाय पुरुष हमारा पीछा करते दिखायी दिये। वे लगभग एक-डेढ़ फर्लांगकी दूरीपर थे। कहना न होगा कि वे चोर थे। उन्हें देखकर हमें भागनेके सिवा और कोई उपाय नहीं सूझा। हम ईश्वरका स्मरण करते हुए पूरी शक्ति लगाकर दौड़ने लगे। पीछे-पीछे चोर भी दौड़ने लगे। रास्तेमें शिवजीका एक मन्दिर पड़ता है, वह इतना अधिक जीर्ण है कि जिसे मन्दिरके बजाय खँडहर कहना ही बेहतर होगा। हम भागते-भागते उस खँडहरतक पहुँचे। अबतक अन्धकारने अच्छी तरह अपना साम्राज्य स्थापित कर दिया था। न तो चोरको हम दीखते थे, न हमें वे दिखायी देते थे। ऐसी स्थितिमें हम दोनों ठहर गये। मैंने दियासलाई जलायी और खँडहरको देखकर उसमें हम घुस ही रहे थे कि मुझे द्वारपर एक बहुत बड़ा मकड़ीका जाला दिखायी दिया और मेरे हृदयस्थ परमेश्वरने मेरे हृदयमें मकड़ीके प्रति दया उत्पन्न कर दी। मैंने अपने साथीको रोककर कहा—'देखो साठेजी! यह जाला एक छोटेसे जीवकी महीनोंकी मेहनत होगी, इसे तोड़ना उचित नहीं, हमें इसे तोड़े बिना ही खँडहरमें जाना है।' साथी भी सात्त्विक गुणसम्पन्न था। उसे मेरी बात पसंद आयी और हम दोनों बड़े कष्टसे दीवालपर चढ़े और कूदकर अंदर पहुँचकर छिप गये। मेरे देह-

मन्दिरमें मन साधक प्रभुका नाम जप रहा था। कुछ ही समय बीता होगा कि चोर भी वहाँ आ पहुँचे। एकने सबको ठहराकर कहा—'ठहरो, हमलोग शायद खँडहरतक पहुँचे होंगे, मेरा अनुमान है, वे लोग इसीमें छिपे हों, दियासलाई जलाओ। दियासलाई जलायी गयी और हमें जूतोंकी आवाज सुनायी देने लगी। खँडहरके पास आते ही मुखियाने अन्य चोरोंसे कहा—'चलो-चलो, वे यहाँ नहीं छिपे हैं; क्योंकि खँडहरके द्वारपर मकड़ीका जाला लगा है। यदि यहाँ छिपते तो यह जाला अवश्य ही कायम नहीं रहता।' वे चल दिये।

हम घबराये हुए चुपचाप वहीं दुबके रहे। कुछ समय बाद खँडहरसे निकले और वहाँसे दो फर्लांगपर स्थित बरखेड़ नामक गाँवमें पहुँचकर वहाँ राम-मन्दिरमें ठहरे। अब हमारे हृदयसिन्धुमें उछलती हुई घबराहटकी भीषण तरङ्गें शान्त हुईं। मैंने परमेश्वरका आभार मानते हुए मित्रसे कहा—'साठेजी! देखो, मेरे हृदयस्थ परमेश्वरने प्रेरणा करके हमें मकड़ीका जाला दयावश नहीं तोड़ने दिया। इसीसे आज हमारी इज्जत और जान बच गयी।'

इस घटनासे यही दो बोधरत्न ग्रहण करने चाहिये कि 'किसी भी प्राणीका भला करने या चाहनेसे अपना भला अपने-आप ही होता है तथा हृदयस्थ प्रभुकी अनुमतिसे कार्य किये जायँ तो हमारा योगक्षेम वे स्वयं वहन करते हैं।'

बोलो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जय!

—बटवाड़ीकर मधुकर आखरे, बटवाड़ी (महाराष्ट्र)

भलेका फल भला

दो सज्जनोंका हिस्सेदारीमें बंबईमें रूईका कारोबार था। वे आढ़तियोंका तैयार माल भी मँगवाकर बेचा करते थे और रूईकी दलालीका काम भी उनके यहाँ होता था। एक दूसरे बड़े व्यापारीके साथ उनका लेन-देनका व्यापार चलता था। उसके अकस्मात् व्यापारमें बहुत बड़ा नुकसान हो गया। अतः इन दोनों सज्जनोंके फर्मके लगभग चालीस हजार रुपये उक्त व्यापारीमें रह गये। वह था ईमानदार, पर घाटा इतना अधिक हो गया कि वह सबके रुपये चुका नहीं सका। इनकी फर्मने उसपर कोर्टमें नालिश कर दी। उसको रुपये तो देने थे ही, अतः उसने कोई एतराज नहीं किया। वरं अन्तिम पेशीके दिन तो वह अदालतमें हाजिर ही नहीं हुआ। उसपर खर्चसमेत लगभग पैंतालीस हजारकी एकतरफा डिग्री हो गयी। उसके पास रुपये नहीं थे, यह बात सबको मालूम थी, पर उसके घरमें उसकी दो विवाहिता लड़कियोंका प्रायः दो लाखका जेवर रखा था। इस बातका पता इस फर्मके एक हिस्सेदारको लग गया। उन्होंने उसके घरपर कुर्कीका आर्डर कोर्टसे ले लिया। इस बातका जब दूसरे हिस्सेदारको पता लगा तो उन्होंने कहा कि 'अपने रुपये सचमुच लेने हैं और उन्हें वसूल करना भी न्यायसंगत है; पर जब हमें यह मालूम हो गया है कि उसके पास अपने पैसे नहीं हैं, लड़कियोंका जेवर है तो उस जेवरको कुर्क कराना उचित नहीं।'

यह बात पहले हिस्सेदारको नहीं जँची। उन्होंने कुर्कीकी व्यवस्था करवा दी। तब दूसरे हिस्सेदारने दूसरी जगह जाकर उक्त व्यापारीको फोन कर दिया कि 'हमारी डिग्रीके रुपयोंकी वसूलीके लिये आपके घर अभी कुर्की आनेवाली है। आप अपनी लड़कियोंके गहनेको तुरंत हटा दीजिये।' वह तो सुनकर कृतज्ञतासे भर गया। गहना हटा दिया गया। कुर्कीवाले असफल वापस लौट आये। पहले हिस्सेदार इससे कुछ नाराज तो हुए; पर वे भी धार्मिक विचारके थे। इससे उन्होंने भी संतोष माना।

परिणाम यह हुआ कि उक्त व्यापारीके हृदयमें इतनी कृतज्ञता जगी कि उसने अपने देशके रहनेके मकानको केवल इसीलिये बेचकर इनके असली रुपये चुका दिये। 'भलेका फल भला'

—शिवरतन माहेश्वरी

भगवान् महामृत्युञ्जयकी कृपा

भगवान् महामृत्युञ्जयका आराधक मैं अपने जीवनके स्मृतिकालसे हूँ और उनपर सदा मेरा श्रद्धा-विश्वास रहा है एवं जीवनपर्यन्त वह अक्षुण्ण रहेगा। यह निर्विवाद है कि भारी-से-भारी संकट-कालमें भी उनकी कृपाके बलपर मेरा उद्धार होता रहा है, जिसे मैंने अपनी आत्म-कथामें क्रमवार संकलित भी किया है। उसीमेंसे एक घटनाका उद्धरण नीचे दिया जा रहा है।

मेरा जन्म-स्थान मध्यप्रदेशान्तर्गत सतना जिलेकी तहसील अमरपाटनके एक छोटे-से ग्राम करीमें है। मेरा अब भी स्थायी निवास इसी ग्राममें है। जन्म-स्थान होनेके नाते इस ग्रामसे मेरी ममता भी असीम है। जिस स्थानपर इस ग्राममें मेरा आवास स्थित है, वह बहुत पुराना है। मेरे बाबा गुरु वंशधारी राम अग्निहोत्रीने इस स्थानपर विक्रमी संवत् १९१५ में वर्तमान आवासकी नींव डाली थी, तबसे इसी स्थानपर मेरा आवास स्थित है।

आवासके साथ ही एक साधारण कुएँका भी निर्माण मेरे स्वर्गवासी बाबाने कराया था, पर उस कुएँका जल मई लगते ही घट जाता था और गरमीके दिनोंमें करीब चार फर्लांगसे जल मँगाकर गुजर करना पड़ता था। इस अभावको दूर करनेके लिये वि० सं० १९९२ में मैंने एक दूसरे कूपका निर्माण कराया, पर इसमें भी वही हाल रहा, पर्याप्त जल प्राप्त करनेके लिये मैंने कटनी और जबलपुरसे भी बोरिंग करनेवालोंको बुलाया, पर फल कुछ न हुआ। लगभग चार हजार रुपये व्यय करनेपर भी जलकी सुविधा न प्राप्त हो सकी।

अन्तमें मैंने एयर कम्प्रेशर मशीनके लिये उपमन्त्री महोदय स्वास्थ्य-विभाग म० प्र० से प्रार्थना की। उनकी कृपासे उक्त मशीन मुझे जून १९६२ में प्राप्त हुई। लगातार दो दिनोंतक मशीनसे सारा कुआँ छेद डाला गया; पर जल प्राप्त न हुआ। दूसरे दिन शामको मशीनके नियन्त्रक हताश होकर अगले दिन प्रातःकाल ही वापस जानेके लिये उद्यत हो गये। मैं भी हताश था और सोच रहा था कि अब इस पुराने आवासको ही बदल दूँगा, जहाँपर जलका इतना बड़ा

अभाव तथा कष्ट है, वहाँ रहना ठीक नहीं।

दूसरे दिन नित्यकी भाँति प्रातःकाल जब मैं भगवान् महामृत्युञ्जयका ध्यान कर रहा था, तब मन-ही-मन मैंने जल-अभावकी पूर्तिके लिये कातर प्रार्थना की। प्रार्थनामें मग्न ही था कि अन्तरात्मासे प्रतिध्वनि हुई कि आज पुनः मशीन कुएँमें लगायी जाय। जल प्राप्त होगा। प्रतिध्वनि होते ही ध्यानभंग हुआ और मैं स्थानसे उठकर नियन्त्रकके पास उस स्थानपर आया; जहाँ वे वापस लौटनेके लिये अपना डेरा-सामान बाँध रहे थे। मैंने उनसे कहा कि 'आज एक बार और मशीन लगाइये और अगर एक बारमें जल न निकला तो आप मशीनके साथ वापस चले जाइयेगा।'

बहुत कहने-सुननेके बाद नियन्त्रक बड़े क्रोधके साथ कुएँमें घुसे और उन्होंने अपनी मशीनको चालू किया। कठिनतासे वे पाँच मिनट भी मशीन न चला पाये होंगे कि पानीका एक मोटा स्रोत ऊपर उछलने लगा। नियन्त्रक कुएँके भीतरसे 'खींचो-खींचो'की आवाज लगाकर चिल्लाने लगे। मैं कुएँकी जगतपर ही बैठा भगवान् महामृत्युञ्जयनाथसे मन-ही-मन प्रार्थना कर रहा था। उनकी चिल्लाहट सुनकर मैंने पूछा—'क्या बात है?' नियन्त्रकने घबराहटके साथ कहा—'शीघ्र निकालिये, नहीं तो मैं डूब जाऊँगा; पानीका मोटा स्रोत नीचेसे फूट रहा है और पानी मेरी कमरतक आ गया है।'

मैंने मनोरथ सिद्ध हुआ जान भगवान् महामृत्युञ्जयको मन-ही-मन प्रणाम किया और नियन्त्रकके निकालनेकी शीघ्र ही व्यवस्था भी की। नियन्त्रकके निकलते-निकलते दस फुट पानी कुएँमें हो गया। आनन्दकी सीमा न रही। भगवान् महामृत्युञ्जयके पूर्णाभिषेककी व्यवस्था की। अब शीतल और सुस्वादु जलसे सैकड़ों प्राणी तृप्त हो रहे हैं। भगवान् महामृत्युञ्जयकी आस्तिकता सदा ही फलवती होती है, इसमें किञ्चिन्मात्र भी संदेह नहीं।

—गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री, इतिहासकार, रीवाँ (म० प्र०)

उच्चकोटिकी ईमानदारी

जिन उच्चकोटिके ईमानदार व्यक्तिपर ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं, खेद है कि वे अब इस संसारमें नहीं हैं। गत ८ दिसम्बर १९६२ को उनका स्वर्गवास अपने सुयोग्य पौत्र श्रीनिर्मलकुमार भय्याके साथ कलकत्ता जाते समय अचानक हार्टफेल हो जानेसे नर्मदातटवर्ती बड़बाह (म० प्र०) में लेखकके लघु भ्राता श्रीव्रजमोहनदास गाँधीके निवास-स्थानपर हो गया, जहाँ श्रीओंकारेश्वरकी तीर्थयात्राके लिये आप सपरिवार ठहरे थे।

आपका शुभ नाम था श्रीलक्ष्मीनारायणजी भय्या। इन्दौरकी सुप्रसिद्ध फर्म श्रीचतुरभुज गणेशरामके आप मालिक थे, जिसका अधिकतर सम्बन्ध राजा-महाराजा और जागीरदारोंसे ही रहा और उन दिनों इन्दौरके तोपखानेमें इनकी सबसे बढ़ी-चढ़ी कपड़ेकी दूकान थी। कपड़े आदिके व्यवसायमें आपको भारी धक्का लगा। जिनमें पैसा लेना था वह समयपर आ नहीं पाया। नतीजा यह हुआ कि आप सब कुछ छोड़कर उज्जैन आ बसे। आपकी नीयत बिलकुल साफ थी, अतः ईश्वरकी कृपासे यहाँ स्व० मनोहरलालजी जायसवालकी फर्म श्रीमनोहरलाल बालमुकुन्दसे आपका सम्बन्ध जुड़ गया और इन्हींकी भागीदारीमें सूतका धंधा आपने उज्जैनमें आरम्भ किया एवं भगवत्कृपासे वह उच्च शिखरतक पहुँचा। द्वितीय महायुद्धके समय एकतरफा तेजीमें आपने लाखों रुपये कमाये। भागीदारी भी सानन्द समाप्त की और इन्दौरकी पुरानी फर्मके प्रायः १६ साल पुराने करीब एक लाख रुपयेका कर्ज एक-एकके घर जाकर आपने चुकाया और तब कहीं भाड़ेके मकानसे घरका मकान बनवाकर उसमें रहनेको गये।

आजके युगमें ईमानदारीके ऐसे उदाहरण बहुत कम देखे-सुने जाते हैं।

—राधाकृष्ण गाँधी, पत्रकार

★★★

आदर्श अतिथि-सत्कार

हम देख रहे हैं कि आजके इस भौतिकवादी आसुरी युगमें सच्ची मानवताका दिनोंदिन ह्रास होता जा रहा है। अतिथि-सत्कारकी भावनाकी जगह अतिथि-तिरस्कारकी भावना घर कर रही है। शिक्षित तथा उच्च घरोंमें अतिथि-सत्कारको कोई महत्त्व ही नहीं दिया जाता। परमार्थकी भावनाका लोप हो रहा है।

ऐसे समयमें निम्नलिखित आदर्श अतिथि-सत्कारकी सच्ची घटना मानवताका चिर नवीन कल्याणकारी संदेश सुनाती है। यह घटना बंगालके प्रसिद्ध लोकसेवी एवं परोपकारी महापुरुष ईश्वरचन्द्र विद्यासागरके जीवनसे सम्बन्धित है।

घटना उन दिनोंकी है, जब विद्यासागर महोदय कलकत्तेके पास एक कस्बेमें नौकरी करते थे।

रात्रिका समय था, वर्षा हो रही थी। अन्धेरी रात्रि भयानक प्रतीत पड़ती थी। उसी समय दूरका एक पथिक उस कस्बेमें आया।

उसका दूरका कोई सम्बन्धी या मित्र भी उस कस्बेमें नहीं था जहाँ जाकर वह ठहरता। वह गाँवके मुखियाके पास गया और उससे रात्रिमें उसके यहाँ ठहरनेकी अनुमति माँगी, पर मुखियाने इनकार कर दिया। वह अनेक व्यक्तियोंके पास गया, पर किसीने भी उसे आश्रय नहीं दिया। उसे चिन्ता हुई कि वह रात्रि कहाँ काटेगा। अन्तमें उसने एक व्यक्तिका द्वार खटखटाया, यह घर विद्यासागरका था। मकानका द्वार खुला और पथिकको लालटेन लिये हुए एक प्रसन्नवदन तेजस्वी व्यक्तिके दर्शन हुए। पथिक सर्दीसे ठिठुर रहा था और उसके सारे वस्त्र पानीसे भीग गये थे।

विद्यासागरने उससे कहा—'आइये अंदर बैठिये, बाहर खड़े क्यों हैं?'

सान्त्वनाभरे इन शब्दोंने उस व्यक्तिको हर्ष-विह्वल कर दिया। विद्यासागरने उसे अंदर ले जाकर चारपाईपर बिठलाया।

अतिथिने कहा—'महाशय ! मैं आपके कस्बेके प्रत्येक व्यक्तिके पास गया, पर मुझे किसीने आश्रय नहीं दिया और न कोई प्रेमके दो शब्द ही मुझसे बोला। आपके इन सान्त्वनापूर्ण शब्दोंने मेरा आधा

कष्ट दूर कर दिया। आपने मेरे साथ बड़ा ही उपकार किया है।'

विद्यासागर बोले—'इसमें मैंने कौन-सा बड़ा कार्य किया है। यह तो गृहस्थीका धर्म है। 'अतिथिदेवो भव' (अतिथि देवता है)। अतः अभ्यागतका सत्कार करना मेरा धर्म है।'

विद्यासागरने उसके गीले वस्त्र उतरवाये एवं अपने नये सूखे वस्त्र पहननेको दिये। वह ठंडसे काँप रहा था। विद्यासागरने कोयलेकी अँगीठी जलायी और उसके शरीरको ताप पहुँचाया। पथिकमें ताजगी आ गयी।

अतिथिके मना करनेपर भी उसके लिये भोजनका प्रबन्ध किया।

रात्रिमें उसके सोनेका पूरा प्रबन्ध किया। अनजान अतिथिने रात्रि सुखसे व्यतीत की। प्रातः जब उसने उनके घरसे प्रस्थान किया तो उसके नेत्रोंमें हर्षके आँसू थे।

उसने विद्यासागरसे कहा—'आप मनुष्य नहीं साक्षात् देवता हैं।' वास्तवमें यह आदर्श अतिथि-सत्कारका एक अनुपम उदारहण है।

अतिथियों, दीन-दुःखियों एवं विपत्तिग्रस्त व्यक्तियोंकी सेवा करना ही सच्ची मानवता है।

—प्रो० श्यामनोहर व्यास, एम्०एस्-सी०

दरिद्रनारायणकी आदर्श दया

सरजू आज इस धरतीपर नहीं है, किंतु मेरी स्मृतिमें सदैवके लिये टँगा हुआ है। उसका वात्सल्यसे भीगा चेहरा जैसे आज भी स्वामी रामतीर्थके शब्दोंमें शब्द मिलाकर कह रहा है—'मनका अमृत कभी समाप्त हुआ है रे? दोनों हाथोंसे उलीचे जा पगले। कृपणता क्यों बरतता है?' अपने घरमें अँधेरा रखकर भी दूसरेके घरमें दीया चासना मैंने सरजूमें देखा!

मैं उस गाँवमें स्थानान्तरित होकर गया था। परीक्षामें बैठनेकी अनुमति मिल चुकी थी, किंतु वेतनका कुछ पता न था। अनुमति वैसे ही विलम्बसे प्राप्त हुई थी, फिर अब तो लेट फीस देकर भी फार्म भेजनेका समय पास आ रहा था। सोच रहा था यदि पैसोंके अभावमें फार्म न भरा गया तो एक वर्ष व्यर्थ चला जायगा। गाँवमें किसीसे जान-पहचान नहीं थी। उधार माँगनेमें आत्मग्लानि होती थी। चिन्तासागरमें डूबता-उतराता एक दिन बैठा था कि पाठशालाका 'पार्ट टाइम सर्वेन्ट' सरजू जिसे उन दिनों झाड़-पानीके तीन रुपये माहवार मिलते थे, मेरे पास आया और अभिवादनके पश्चात् सामने धरतीपर बैठ गया। मुझे चुप देखकर उसने नेत्रोंमें ममताका अथाह सागर समेटे मुझसे चुप्पीका कारण पूछा और तब मैंने अटकते-अटकते उससे पैसोंके अभावकी बात कह दी।

एक-एक पैसेको मोहर समझनेवाला दुःख-दारिद्र्यकी साक्षात् प्रतिमा वह दरिद्रनारायण दूसरे दिन सुबह ही मेरे पास ५० रु० लेकर आया। अंधेको क्या चाहिये—दो आँखें। पैसे लेकर मैं भागा हुआ अजमेर आया और मैंने फार्म भर दिया।

रविके रथका पहिया घूमता रहा। काले और धौले चूहे जिन्दगीको कुतरते रहे, किंतु न तो वेतन आया और न मैं सरजूको रुपये दे पाया। एक दिन शामकी छुट्टी करके मैं घरकी ओर जा रहा था कि कुछ

लोगोंको सामने पेड़-तले खड़े पाया। आवाजें आ रही थीं—'नहीं चुकाया जाता तो पैसे क्यों लिये? 'लेत परम सुख ऊपजे लेके दियो न जाय' अजी पूरा अमलदार है, ऐसे अमल खानेकी बजाय मिट्टी क्यों नहीं फाँकता।' आदि-आदि।

पास गया और जो देखा तो माथा घूम गया। आँखोंके आगे तिरमिरे तैरने लगे—एक फटे टाटपर एक मटकी पानीकी और एक मिट्टीकी हँडिया लिये सरजू बैठा है। लोगोंने बतलाया महाजनसे ५० रु० तीन माह पहले पंद्रह दिनका नाम लेकर अपनी झोपड़ी और एक-दो काँसेके बरतन गिरवी रखकर लाया था, आजतक नहीं चुकाये। इससे महाजनने मकानसे निकालकर बाहर किया और सामानको नीलाम कर दिया।

'सब कुछ समझ गया'—कहते हुए मैंने आगे बढ़कर सरजूकी बाँह थामी और कहा—'उठो सरजू, आजसे मेरे साथ रहना।' महाजनका हिसाब उसी रोज जैसे-तैसे बेबाक कर दिया गया।

पीछेसे गाँववाले कह रहे थे—'मास्टर साहब बड़े सज्जन, संत-महात्मा और न जाने क्या-क्या हैं।'

मैं कैसा था इसे किसीने नहीं जाना और सरजू कैसा था इसे भी शायद किसीने नहीं जाना।

—गोपालकृष्ण जिंदल

★★★

दरिद्रनारायणकी सेवा

पौष महीनेकी प्राणहारिणी सर्दी थी। फिर, उसमें महाबलेश्वर-जैसा हिल-स्टेशन। रातके लगभग दस बजे होंगे। लोग सब सो गये थे। झींगुरोंकी आवाज और गिरते पत्तोंकी खड़खड़ाहटके अतिरिक्त सर्वत्र निस्तब्ध शान्ति छायी हुई थी।

मैं मधुवनसे वापस लौट रहा था। मुझसे कुछ ही आगे एक युवक नख-शिख गरम सूटसे लैस मजेमें गाता हुआ धीरगतिसे चल रहा था। वह अचानक एक जगह एकदम रुक गया। उसने कान लगाये। रास्तेमें एक पेड़की जड़में सर्दीसे थर-थर काँपता हुआ चिथड़े लपेटे एक भिखारी घुटने सिकोड़े पड़ा कराह रहा था। इतनेमें मैं भी उस युवकके समीप पहुँच गया। युवकने धीरेसे अपने शरीरपरसे गरम ओवरकोट उतारा। भिखारीके पास जाकर उसको उठाया और बिना ही कुछ कहे-सुने उसके शरीरपर वह कोट पहना दिया, सिरपर अपना मफलर लपेट दिया और दो रुपयेके नोट उसके हाथपर रख दिये

भिखारी एक बार तो हक्का-बक्का-सा रह गया। उसके मुरझाये होठ काँपते हुए खुले—'हे भगवन्! तेरी कैसी दया।' फिर युवकको सामने देखकर उसने कहा—'मेरे प्यारे! मैं तुझे क्या दूँ? मेरे पास है ही क्या? सिर्फ दुआ।' यों कहकर उसने युवकके दोनों हाथ चूम लिये।

इस अनजान युवक और दरिद्रनारायणका यह पुनीत मिलन आज भी मुझमें आनन्दकी लहरें उत्पन्न कर रहा है। (अखण्ड आनन्द)

—दलपतभाई डा० श्रीमाली

★★★

बच्चोंके सूखा रोगकी अनुभूत दवा

दूध पीनेवाले छोटे बच्चोंको सूखेकी बीमारी हुआ करती है। माताका दूध हजम न होना, हरे-पीले ज्यादा दस्त होना, शरीरका खून यहाँतक सूख जाना कि जिससे चमड़ीतक चटकने लगे, शरीरका अत्यन्त कृश हो जाना, आँखें छोटी पड़कर अंदर घुसती हुई-सी दिखायी देना तथा बच्चेकी रोनेकी आवाजका बहुत धीमी पड़ जाना आदि लक्षण इस बीमारीमें प्रकट होते हैं।

मेरे घरमें बहुत बच्चे हैं। उनको यह बीमारी अक्सर हो जाया करती थी। अन्तमें पंजाबके एक महात्माने एक दवा तथा उपचार बताया, उसके करनेसे बच्चोंका रोग मिट गया। तबसे मैंने इसका बहुत बार प्रयोग करके सफलता पायी है। कल्याणके पाठकोंको भी इससे लाभ उठाना चाहिये। दवा और उपचार नीचे लिखे अनुसार हैं—

सफेद या पीले रंगकी गौकी साल-डेढ़ सालकी बछड़ीका गोमूत्र चीनी या काँचके बरतनमें लेकर पंद्रह-बीस मिनट बाद उसे साफ कपड़ेसे छान लिया जाय। उस छने हुए गोमूत्रमेंसे बच्चेकी माता करीब एक तोला पी ले और फिर रोगी बच्चेको उसकी आयुके अनुसार तीनसे पाँच माशेतक पिला दे। यों बिना नागा लगातार सात दिनतक माता और बच्चा दोनों पीते रहें।

जिस दिनसे यह गोमूत्र पीना शुरू किया जाय, उसी दिनसे उगते हुए सूर्यकी सुहाती हुई धूपमें माता बच्चेको लेकर बैठ जाय। बच्चेकी पीठ सूर्यकी ओर रखे और नागरबेलका पान लगा हुआ (—जिसमें सिर्फ कत्था, चूना, सुपारी हो और जिसमें २॥ पत्ते चिरपोटणके डाले हुए हों।—) माता मुखमें लेकर चबाती रहे और बच्चेकी पीठकी रीढ़की हड्डीपर उस पानका पीक डालती और खूब

मालिश करती रहे। यह पीकका मालिश भी सात दिनोंतक करना चाहिये।

चिरपोटण बरसातकी मौसममें हर कहीं उगी मिलती है। अन्य मौसमोंमें साग-सब्जीकी बाड़ियोंमें तथा बगीचोंमें मिलती है। चिरपोटणका पौधा डेढ़ या दो फुटतक बड़ा होता है। इसके नीचेकी डंठल कुछ काली झाँई-सी देती है, मिर्च-जैसे तीखे पत्ते होते हैं। मौसममें इसमें चिरमीके समान फलोंके झूमके लटकते रहते हैं। पक जानेपर ये लाल हो जाते हैं, इनको पंसारी दवामें बेचते हैं। यूनानीमें इनको मकोय कहते हैं। जिनको चिरपोटण न मिले, वे उसके बदले स्वस्थ भैंसका गोबर लेकर कपड़ेमें निचोड़कर उस निचोये हुए पानीमें भैंसका दही अच्छी तरह मिलाकर उसका बच्चेकी रीढ़पर मालिश करें। इसे चौदह दिनोंतक मलना पड़ेगा। इससे भगवत्कृपासे बच्चा अवश्य स्वस्थ हो जायगा।

—ठाकुर हरीसिंह नरुका, पो० किशनगढ़ (अजमेर) राजस्थान

अनोखा बर्ताव

जाड़ेकी कड़कड़ाती सर्दी। खून जम जाय, ऐसी सरसराती ठंढी हवा चल रही थी। ठंढी हवाका ऐसा झोंका आता था कि खेतोंकी रखवाली करनेवाले अपनी मचानपर जग जाते थे। ऐसा ही एक जबरदस्त ठंढा झोंका आया और खेतमें मचानपर सोया हुआ गोविन्द भगत जाग गया। उसके कानोंमें कानाफूसीकी आवाज आयी।

'अरे मगनजी, अब बस करो, बेचारे भगत आदमीका ज्यादा नहीं लेना चाहिये।'

'अब चुपचाप बीनता जा, ऐसे धानी-जैसे बिनौले मिलनेका संयोग सहज ही हाथ नहीं आता।'

'अरे मोहन! तुझे ऐसी दया रखनी थी तो हमारे साथ नहीं आना चाहिये था।' तीसरे व्यक्तिने कहा।

'अरे लेकिन, प्रभात होनेको आया है, देख वह तारा भी तो उग गया है।' मोहन बोला।

'अरे मूर्ख! पूरा एक मन तो हो जाने दे।' पल्लेमेंसे ढेरमें डालते हुए मगनजीने कहा।

गाँवके तीनों नामी चोर भगतको सोया समझकर बिनौले बीनते चले जा रहे हैं। दो-दो मन बिनौले बीने गये। पोटें बाँधकर तैयार कर लीं। इसी बीचमें पड़ोसके खेतका रखवाला; उसे घरमें दही मथना था, इसलिये जल्दी उठ गया। उसने मचानपर बैठे-बैठे ही बीड़ी सुलगायी। तीनोंकी हिम्मत हवा हो गयी। पहले दोनोंको मोहनजीने पोटें उठा दीं और वे चल दिये। मोहनजी पोट उठानेका जीतोड़ प्रयत्न करने लगा। इतनेमें ही आवाज आयी—

'भाई ! परेशान मत हो, मैं उठाये देता हूँ।' यों कहते हुए भगत मचानसे कूद पड़े और दौड़कर मोहनजीके पास आ पहुँचे। मोहन भागनेकी तैयारी करने लगा, परंतु वहाँ तो फिर मिठासभरे शब्द निकले—

'भागना मत भाई! तेरे स्त्री-बच्चे भूखे होंगे, उठा ले जा।'

मोहनके पैर रुक गये। वह थरथर काँपने लगा। इतनेमें तो भगतने

उसका हाथ पकड़कर पीछेसे जोर लगाकर पोट उसके सिरपर उठा दी। मोहनजी पोट उठाकर चल दिया। भगत मचानपर जाकर सो गये।

सबेरा हुआ, भगत उठे। चिलमका दम भरते हुए हाथमें लाठी लेकर घरकी ओर चल दिये। घर पहुँचते ही मोहनजीको पोट रखे अपने घरके बाहर बरामदेमें बैठे देखा। भगतको देखते ही वह सामने आकर भगतके चरणोंमें झुक गया। उसने कहा—'माफ करना भगत! मैंने आपको पहचाना नहीं। बुरी संगतमें पड़कर खेतमें चोरी करने घुस गया। मुझसे यह बहुत बड़ी भूल हो गयी, इसका मुझे बड़ा पछतावा हो रहा है।'

भगतने हाथ पकड़कर उसे उठाया और कहा—'भाई! तेरे स्त्री-बच्चे भूखे हों तो तू ले जा, इसमें कुछ भी पाप नहीं है। मनुष्यका उपजाया हुआ मनुष्य न खाय तो फिर कौन खायेगा?'

उस दिनसे मोहनजीने चोरी करना छोड़ दिया और भगतके साथ उनके साथीकी तरह रहने लगा। आत्माने आत्माको पहचाना। मोहनजीका बुरी वृत्तिरूपी कीचड़ भगतके अमृत-सिंचनसे धुल गया और उसका हृदय कंचनके समान साफ हो गया। वह स्वयं परिश्रम करके रोटी कमाना सीख गया। कैसा अनोखा बर्ताव। कैसा संगका रंग। (अखण्ड आनन्द)

—बालजी भाई० ह० पटेल

★★★

डाक्टरकी सत्यप्रियता और दयालुता

डाक्टर साहब अपनी विद्यामें पारंगत थे और भगवान्‌की कृपासे उनके हाथ बड़ा यश था। डाक्टर साहबकी दवा अमृतका-सा काम करती। डाक्टरकी यह कीर्ति दूर-दूरतक फैली थी। इससे उनके यहाँ रोगियोंकी भीड़ लगी रहती। अमीर-गरीब बीमार सभी होते हैं, इसलिये अमीर-गरीब सभी उनके पास आते भी। वे सबसे समान व्यवहार करते, उन्हें आश्वासन देते और भगवत्कृपापर विश्वास करके, भगवान्‌का नाम लेकर दवा देते और इसी प्रकार भगवत्कृपापर विश्वासके साथ भगवन्नाम लेकर ही दवा सेवन करनेके लिये कहते। यह भगवत्कृपा तथा भगवन्नामका ही प्रभाव होगा कि उनके रोगी प्रायः शीघ्र अच्छे हो जाते। रोगीके अच्छे होनेपर वे दवा चालू न रखकर उसे संयम-नियमसे रहने तथा भगवन्नामका विशेष आश्रय लेनेकी सम्मति देते।

उस समय जमींदारी कायम थी और सर्वत्र जमींदारोंका प्रभाव था। जमींदारोंके जहाँ बहुत सेवा-उपकार धर्मके काम होते, वहाँ उनमेंसे कई लोगोंके द्वारा मदकी प्रबलतासे बुरे काम भी बहुत बनते।

डाक्टर साहबके गाँवके जमींदार अच्छे आदमी थे। डाक्टर साहबसे उनका बड़ा प्रेम भी था। घरमें खुला आना-जाना था और उनसे डाक्टर साहबको आर्थिक लाभ भी कम नहीं था। जमींदारका लड़का बदचलन था और स्वाभाविक ही उसके साथी-संगी भी ऐसे ही थे। बड़े आदमियोंके लड़कोंसे अपना स्वार्थ-साधन करनेके लिये आवारा लोग उनकी सेवा-खुशामद करके उन्हें पतनके गर्तमें गिराया करते हैं। यहाँ भी ऐसी ही बात थी। एक कुलीन गृहस्थकी पुत्रवधूके सम्बन्धमें साथी-संगियोंने जमींदारके लड़केको उकसाया। उन्होंने हर तरहकी सहायता देनेका वादा किया। जमींदारका लड़का तैयार हो गया। बहुत-सी अनुचित कार्रवाइयाँ हुईं। अन्तमें इसी दुष्प्रपञ्चके सिलसिलेमें जमींदार-पुत्रके द्वारा उस लड़कीके पिता सद्‌गृहस्थका खून हो गया। मामला सच्चा था। पर डाक्टरकी रिपोर्टपर निर्भर करता था। डाक्टरसे जमींदारने कहा कि 'इसे आत्महत्या सिद्ध कर

दिया जाय।' पर डाक्टरने बड़ी विनयके साथ उत्तर दिया—'आपके तथा आपके लड़केके साथ मेरी बड़ी सहानुभूति है, मैं आपके दुःखसे दुःखी हूँ। आपके रोनेके साथ मुझे भी रोना आता है, पर मैं जानता हूँ कि यह आत्महत्या नहीं है, हत्या है और इसका करनेवाला आपका पुत्र है। तब मैं कैसे दूसरी बात लिखूँ।' जमींदारने बहुत दबाया। अन्तमें एक लाख रुपयेका लालच दिया और न माननेपर अपनी जमींदारीके बलसे बरबाद कर डालनेकी धमकी भी दी। पर डाक्टरने अपने सत्यको नहीं छोड़ा। सच्ची रिपोर्ट लिखकर जमी-जमाई डाक्टरी तथा आमदनीको लात मारकर गाँव छोड़कर वे दूसरी जगह चले गये। गाँवमें रहनेपर जमींदार तंग करता।

डाक्टर सत्यके हिमायती, न्याय-परायण होनेके साथ ही दयालु भी थे। उन्होंने रिपोर्टके साथ ही कलक्टरको एक पत्र इस आशयका लिख दिया जो सत्य था कि 'लड़केने आवेशमें यह हत्या की है, उम्र छोटी है, जमींदारका एकमात्र लड़का है और गत वर्ष ही विवाह हुआ है, अतएव सरकार इसपर दयापूर्ण भावसे विचार करे!' उस समय कलक्टर ही सर्वेसर्वा होते थे। लड़केपर मुकदमा चला, पर सरकारकी इच्छाके अनुसार उसे केवल दो सालकी ही सजा हुई। डाक्टरकी सत्यप्रियता और दयाशीलताका ही यह सुपरिणाम था।

—देवनारायण तिवारी

आदर्श ईमानदारी

कलकत्ता बड़ा बाजारमें पचास वर्ष पहले शिवलाल तकतमल नामक एक नापासरका फर्म था। संवत् १९८१ में उस फर्मपर कुछ दूसरे फर्मोंके रुपये रह गये, जिनको उस समय उन्होंने चार आने (२५ प्रतिशत) चुकाया था; क्योंकि रुपये थे नहीं। फर्म बंद हो गया था। रुपये पानेवालोंको शेष रुपये मिलनेकी आशा तो क्या, कल्पना भी नहीं रह गयी; पर शिवलाल तकतमलने, जिनके रुपये देने थे, उनकी सूची रुपयोंकी संख्या-समेत रख ली थी। कुछ वर्षों बाद इस फर्मका परिवार कई भागोंमें बँटकर उसके कई परिवार हो गये। इनमें एक परिवारकी हालत आगे चलकर कुछ ठीक हुई तो उन्होंने अपने हिस्सेके रुपये चुका दिये। इधर व्यवसाय अच्छा चला तो उसी एक परिवारने पूरे (शिवलाल तकतमल) फर्मके रुपये गत चैत्र-वैशाखमें चुका दिये। रुपयोंकी संख्या अस्सी हजारसे एक लाखके लगभग होगी। फर्मको बंद हुए चालीस साल हो गये, इस अवधिमें पानेवाले कितने ही फर्म उठ गये, कोई कहीं चले गये। ऐसे लोगोंके कुछ रुपये अभी देने शेष हैं। उनका पता लगाकर रुपये देनेकी चेष्टा चालू है। घरवालोंने कई बार पूछा, पर जिन भाईने रुपये चुकाये, उन्होंने पूरी बात नहीं बतायी। न वे इस घटनाको प्रकाशित ही करना चाहते हैं। इसीसे उनका नाम नहीं लिखा गया है। पर इस ईमानदार परिवारका यह काम है आदर्श और अनुकरणीय तथा प्रशंसनीय, कम-से-कम इस भयानक आजके युगमें!

—नरसिंहप्रसाद शर्मा

★★★

प्रभु-कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव

कुछ वर्ष पूर्वकी बात है। उन दिनों हम लाहौरमें रहते थे। मेरी धर्मपत्नीको कुछ खाँसी-जुकामकी तकलीफ हुई। चिकित्सा की गयी। दस-बारह दिन व्यतीत हो गये, पर आराम न हुआ। उन दिनों उसके पिता जेहलमके पास एक स्थान राजड़में रहते थे। वहीं वे सरकारी कर्मचारी थे। वहाँ खुली जगह थी और जलवायु अच्छा था। उसके पिताने उसे वहाँ बुला लिया। वहाँ एक डाक्टरकी चिकित्सा प्रारम्भ की गयी। थोड़े दिनोंके पश्चात् बड़े दिनों (क्रिसमस) की छुट्टियाँ आ गयीं। मैं भी उन छुट्टियोंमें अपनी धर्मपत्नीके पास राजड़ चला गया। वहाँ उसकी चिकित्सा चल रही थी। खाँसीकी तकलीफ तो थी ही, साथ ही अब हलका-हलका ज्वर भी आने लग गया था। मुझे तीन-चार दिन वहाँ गये हुए थे कि जिस डाक्टरका इलाज था, उसने मुझे अलग बुलवाया और कहा—'मैं तुम्हारी धर्मपत्नीकी चिकित्सा कर रहा हूँ। मैंने उसका बड़ी अच्छी तरह तीन-चार बार निरीक्षण किया है। उसका बायाँ फेफड़ा कुछ खराब हो गया है। पर घबरानेकी कोई बात नहीं। अभी पहली स्टेज ही है। इलाज करनेसे ठीक हो जायगी। पर देख-भाल बड़ी अच्छी तरह करनी होगी।' जब मैंने यह सुना तो मेरे पाँव-तलेकी जमीन निकल गयी। स्वभावतः ही मुझे बहुत चिन्ता हुई। डाक्टरका इलाज जारी रहा और मैं छुट्टियाँ समाप्त होनेपर लाहौर लौट आया। वहाँ मैं हर समय बहुत चिन्तित रहने लगा। न खाना अच्छा लगता, न पानी और न किसी काममें ही मन लगता। इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हो गये।

मुझे दफ्तर जाते हुए कभी-कभी दफ्तरके कामसे ही रास्तेमें सरकारी बैंक जाना पड़ता था। उस दिन जिस रास्तेसे मैं दफ्तर जाता था, उस रास्तेपर एक गिरजाघर पड़ता था। उस गिरजाघरके बाहर एक बड़े बोर्डपर प्रति सप्ताह एक वाक्य (सम्भवतः बाइबिलमेंसे कोई उद्धरण) बड़े मोटे अक्षरोंमें लिखा होता था। मैं जब कभी उधरसे जाता, वह वाक्य अवश्य पढ़ता। ये वाक्य बड़े प्रेरणात्मक तथा आत्माको उठानेवाले होते थे। प्रायः घर आकर मैं उन्हें नोट भी

कर लेता था। मुझे लाहौर वापिस आये हुए दस-बारह दिन हुए होंगे कि एक दिन मैं जब दफ्तरसे चला तो उसी रास्ते मुझको घर जाना था। उस दिन मेरा मन विशेषरूपसे अवसाद और चिन्ताग्रस्त था। चलते समय मैंने मन-ही-मन भगवान्से बड़े कातर भावसे प्रार्थना की—'प्रभो! अब मैं इस चिन्ताको अधिक सहन नहीं कर सकता। ऐसी कृपा करो कि आज वहाँ जो वाक्य लिखा हो, उसके माध्यमद्वारा मुझे कोई ऐसा उपदेश, आशीर्वाद दो, जिससे मेरी चिन्ता दूर हो और मेरे मनको शान्ति मिले।' जब मैं उस स्थानपर पहुँचा तो बड़ी अधीरतासे मैंने उस दिनके वाक्यको पढ़ा। लिखा था—Don't worry, it may never happen. 'मत चिन्ता करो, ऐसा नहीं होगा'। यह बिलकुल मेरी मानसिक स्थितिके अनुकूल था। ऐसा मालूम होता था—भगवान्ने मेरी प्रार्थनाके उत्तरमें मुझे ही यह आदेश दिया था। यह वाक्य पढ़कर मेरी जो अवस्था हुई, मैं उसे शब्दोंमें व्यक्त करनेमें असमर्थ हूँ। मुझे ऐसा भान हुआ कि यह कागजपर लिखा वाक्य नहीं, स्वयं भगवान्की ओरसे ही मेरे लिये यह आकाशवाणी हुई है। एकदम मेरी चिन्ता पता नहीं कहाँ भाग गयी और मेरा मन बिलकुल स्वस्थ, शान्त और हलका हो गया एवं मस्तक प्रभुके आगे झुक गया। मुझे निश्चय हो गया कि मेरी धर्मपत्नीको वह रोग (टी० बी०) नहीं है, जो डाक्टरने बतलाया है। जब घर पहुँचा तो मेरे श्वशुरका मेरे नाम एक पत्र आया हुआ मिला। उसमें लिखा था कि 'मेरे वहाँसे चले आनेके पश्चात् डाक्टरने तीन-चार बार फिर मेरी धर्मपत्नीका अच्छी तरह निरीक्षण किया था, पर अब उसे उसके फेफड़े बिलकुल ठीक लगे हैं। उस प्रकार (टी० बी०) का कोई दोष उनमें दिखायी नहीं दिया और वैसे भी उसका स्वास्थ्य अब पहलेसे काफी सुधर गया है। इसलिये मुझे किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।' साथमें उन्होंने मेरी पूरी तसल्ली और विश्वासके लिये डाक्टरके अपने हाथका लिखा मेरे नामका एक पत्र भी भेजा था, जिसमें डाक्टरने अपने शब्दोंमें वही बातें लिखी थीं जो मेरे श्वशुरने

लिखी थीं। साथ ही लिखा था कि 'पहले शायद फेफड़ोंपर बलगम रहा हो जिसके कारण ऐसी आवाज आती थी और जिससे उन्हें टी० बी० का अनुमान था।' यह पत्र पढ़कर मुझे ऐसा नहीं लगा, जैसे यह कोई नयी बात हो। मुझे ऐसा लगा कि इसका तो मुझे पहले ही पता लग चुका था। हाँ, प्रभुके चरणोंमें मेरा मस्तक एक बार फिर झुक गया और आँखोंमें कृतज्ञताके आँसू आ गये। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इसके थोड़े दिनों पश्चात् ही मेरी धर्मपत्नीका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक हो गया। यह है प्रभु-कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव—प्रमाण!

—लाजपतराय

अतिथि-सेवाका फल

अतिथि-सेवा हमलोगोंके धार्मिक दैनिक कर्तव्योंमें मुख्य है। इसकी महिमा सभी स्मृति तथा पुराणोंने गायी है। एक समय था कि हमारे भारतमें किसी भी बटोहीको भोजन तथा विश्रामकी अपनी यात्रामें चिन्ता नहीं रहती थी। भोजनके समय सभी सद्‌गृहस्थ चाहते थे कि कोई अतिथि भोजन कर ले तो उनका भोजन बनाना सफल हो।

जीवमात्रमें हमारे आराध्यदेव विराज रहे हैं, यह भावनामात्र नहीं है, किंतु ध्रुव सत्य है। निष्काम भक्तिकी यह उच्च अर्चनापद्धति है कि प्रभुकी पूजा एक ऐसे व्यक्तिमें की जाय, जिससे हम न तो परिचित हैं और न जिससे हमारा कोई सम्बन्ध है। केवल ईश्वरीय भावनासे ही सेवा की जाय। हमारे प्रभु तो भावके भूखे हैं। जिस भावसे कोई उनकी आराधना करता है, उसीके अनुसार उसको फल मिलता है। यह घटना साठ-पैंसठ वर्ष पुरानी है, पर है सत्य। परम पूज्य श्रीस्वामी अभयानन्दजी आत्मदर्शी कैलासवासीने बतायी थी।

हाथरसके समीप मैण्डू नामक एक छोटा-सा स्थान है। वहाँ एक सज्जन रहते थे। जो किसी मिडिल स्कूलके हेडमास्टर थे, किंतु किसी

कारणवश उनकी नौकरी छूट गयी थी और वे अपने घरपर रहकर ही बड़े कष्टसे जीवन-निर्वाह कर रहे थे। बहुत समयसे वे नौकरीके लिये प्रयत्न कर रहे थे; किंतु भाग्यवश उनको सफलता नहीं मिलती थी। इसलिये वे निराश तथा दुःखी थे।

उनका घर सड़कके किनारे ही था और द्वारके आगे एक लिपा-पुता चबूतरा था, जहाँ संध्याके समय दो-चार पड़ोसी आ बैठते थे और विविध चर्चासे मनोरञ्जन करते थे।

ज्येष्ठका महीना था, दिनके दो बजे होंगे। चिलचिलाती धूप और भाड़-सी गरम लूसे शरीर जला जाता था। हेडमास्टर साहेब और उनकी धर्मपत्नी सभी खिड़की-दरवाजे बंद किये आराम कर रहे थे। इतनेमें बाहर चबूतरेपर किसीके धम्मसे गिरनेकी आवाज आयी। मास्टरजीने किवाड़ खोलकर देखा तो उन्होंने एक फटेहाल व्यक्तिको पड़े पाया। मास्टरजीने उसको उठाया और सहारेसे भीतर ले आये। उनकी पत्नीने एक शरबतका ठंडा ग्लास पिलाया, जिससे उसको बड़ी शान्ति मिली और वह स्वस्थ होकर बैठ गया। गृहिणीने उस नव आगन्तुकके लिये भोजन बनाया और उसको बड़े प्रेमसे खिलाया। भोजनोपरान्त उसको खाटपर आराम करनेको कहा और पति-पत्नी उसको पंखा झलने लगे। वह शीघ्र ही निद्रादेवीके वशीभूत हो गया।

सोते-सोते वह उठकर बैठ गया और मास्टरजीसे कहने लगा—'तुम्हें सवा सौ रुपये वेतनकी हेडमास्टरी मिल गयी है और परसों तुम्हें इसकी सूचना मिल जायगी।' इतना कहकर वह फिर सो गया। जागनेपर उससे जब मास्टरजीने पूछा तो उसने कहा कि 'मुझे इस बातका किंचित् भी ज्ञान नहीं कि मैंने आपसे कुछ कहा था। मैं तो एक दुःखका मारा चमार हूँ। मैंने तीन दिनोंसे अपने पुत्रकी मृत्युके कारण कुछ भी खाया-पीया नहीं था और भीषण गरमीके कारण आपके द्वारपर बेहोश हो गया था।' अतिथि तो शाम होनेपर चला गया, किंतु मास्टरजीको सवा सौ रुपये महीनेकी नौकरी लग जानेकी सूचना नियत समयपर मिल गयी। श्रीस्वामीजी कहा करते थे कि 'यह भगवान्‌का आवेशावतार था, जो चमारके मुखसे बोला था और मास्टरजीके लिये था यह अतिथि-सेवाका फल।'

—निरञ्जनदास धीर

★★★

सत्संगके एक वाक्यका चमत्कारी फल

(सफेद झंडा फहराया)

गुजरातके कवीश्वर दलपतराम डाह्याभाईके साथ प्रसिद्ध नाट्यकार डाह्याभाई धोलशाजीकी किसी कारण अनबन हो गयी थी और पत्रोंमें परस्पर चर्चाकी मिर्चें उड़ाकर जीवनमें और भी जलन बढ़ायी जा रही थी। इस प्रकार कई वर्षोंतक दोनोंमें वैमनस्य चलता रहा।

एक दिन 'सत्संग-सभा'में किसी संतका व्याख्यान होनेवाला था। उसे सुनने डाह्याभाई धोलशाजी वहाँ गये हुए थे। प्रवचनमें उन्होंने ऐसा एक वाक्य सुना—'बुढ़ापेमें वृद्ध मनुष्यको सारा वैर-जहर भूलकर सुलह-प्रेमकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। दो पशु आपसमें सींगोंसे लड़ते हैं तो वे परस्पर क्षमा चाहें, ऐसा हृदय ही ईश्वरने नहीं दिया। परंतु मनुष्यको तो प्रभुने विवेकशील हृदय दिया है।'

यह वाक्य सुनते ही डाह्याभाईके हृदयपर एक चोट लगी और मन-ही-मन उन्होंने सोचा कि 'बात तो सच है, बुढ़ापा तो आशीर्वाद है, परंतु बुढ़ापेके दोष अभिशाप हैं। मनुष्यको जवानीकी भूलें बुढ़ापेमें सुधार लेनी चाहिये। कड़वी नीमोलीमें भी पकनेपर मिठास आ जाती है।' इससे कवीश्वरके साथ चलते झगड़ेका अन्त करनेकी उन्हें प्रेरणा मिली और सभा समाप्त होते ही वे सीधे कवि दलपतरामके दरवाजेपर पहुँच गये।

दलपतरामके आँगनमें जाकर डाह्याभाई सिर झुकाये खड़े हो गये। दलपतराम इस समय घरमें हिंडोलेपर बैठे झूल रहे थे। वहींसे उनकी नजर डाह्याभाईपर पड़ी। वे कुछ क्षणोंके लिये आश्चर्यमें पड़ गये—'मैं जग रहा हूँ या स्वप्न देख रहा हूँ?' दलपतरामको लगा कि जरा भी पीछे पैर न रखनेवाला महान् योद्धा आज शस्त्र त्यागकर मेरे आँगनमें कहाँसे आ गया? कवीश्वर हिंडोलेसे उतरकर डाह्याभाईके पास पहुँचे।

'भाई! आप मेरे यहाँ?' कवीश्वरने गद्‌गद कण्ठसे कहा कविका प्रेमोद्‌गार स्वीकार करते हुए डाह्याभाईने कहा—'हाँ भाई! अंदर चलिये। अपने दिलकी बातें करें।'

और दोनों अनुभवी वृद्ध घरमें जाकर हिंडोलेपर बैठ गये।

'युद्धमें यदि एक पक्ष सफेद झंडा फहरा देता है तो युद्ध रुक जाता है और सुलह हो जाती है। क्यों, यह बात ठीक है न?' डाह्याभाईने कवीश्वरसे पूछा।

'हाँ भाई, सुलहके लिये ही सफेद झंडा फहराया जाता है।'

डाह्याभाईने सिरकी पगड़ी उतारकर कविके पास रख दी और सिरकी सफेद चोटी दिखाकर कहा—'प्रकृतिकी दी हुई इस सफेद झंडेकी उपेक्षा करके हमलोग कबतक लड़ते रहेंगे। ऐसा विचार मनमें आते ही मैं कवि-हृदयकी क्षमा-याचना करने आपके द्वारपर चला आया।' डाह्याभाईने कहा।

इसका उत्तर कवीश्वरकी जीभने नहीं, उनकी आँखोंसे झरझर झरते हुए आँसुओंने ही दिया। दोनों वृद्ध राम-भरतकी तरह चिपट गये और जबतक जीवित रहे पवित्र मैत्री भावसे ही रहे। (अखण्ड आनन्द)

—धैर्यचन्द्र बुद्ध

★★★

गौओंको महामारीसे बचानेका सरल साधन

पुष्यार्क (रविवार—पुष्यनक्षत्र या गुरुवार—पुष्यनक्षत्र) के दिन शुद्धतापूर्वक भोजपत्रपर अनारकी कलमसे गोरोचन या अष्टगन्धके द्वारा अर्जुनके—अर्जुन, किरीटी, गुडाकेश, धनञ्जय, पार्थ, भारत, सव्यसाची, कपिध्वज, कौन्तेय, कुरुनन्दन, पाण्डव, कुरुप्रवीर, कुरुश्रेष्ठ, कुरुसत्तम, परंतप, पुरुषर्षभ, भरतर्षभ, भरतसत्तम—इन अठारह नामोंको लिखकर गुग्गुल वगैरहका धूप देकर, लाल कपड़ेमें बाँधकर जानवरोंके आने-जानेवाले दरवाजेके ऊपर लटका दें। पर्वके समय धूप कर दिया करें। रविवार पुष्य या गुरुवार पुष्यनक्षत्रका मौका न लगे तो जब भी पुष्यनक्षत्र हो, रविके होरामें यह प्रयोग कर सकते हैं, विश्वास रखिये—निश्चय सफलता मिलेगी।

—सुरजमल भुतड़ा, आनदी, रायपुर

भगवान् जो करते हैं, परम मंगलके लिये करते हैं

कुछ वर्षों पहलेकी बात है। मेरे एक सुपरिचित मित्र थे। बहुत अच्छे सज्जन थे। भगवद्विश्वासी थे। व्यापारमें घाटा लगनेसे हाथ कुछ तंग हो गया था और इसी कारण उनकी सयानी लड़कीके विवाहकी व्यवस्था नहीं हो पा रही थी। उनका बड़ा ऊँचा खानदान था और कुछ ही वर्षों पहलेतक वे बड़े सम्पन्न थे। अतः लड़कीके लिये योग्य वर खोज रहे थे। बड़ी कठिनतासे एक जगह सम्बन्धकी बात पक्की हुई। लड़का पढ़ा-लिखा, सुन्दर और कमानेवाला था। दो-तीन सौ रुपये मासिक वेतनपर एक व्यापारीके फर्ममें काम करता था। यद्यपि खानदानकी तथा पैसेकी दृष्टिसे घर उनके योग्य नहीं था, पर लड़की बड़ी हो गयी थी तथा बड़े दहेजके लिये उनके पास पैसे नहीं थे। दहेज बिना अच्छा घर मिलता नहीं था, इससे स्वीकार करना पड़ा। विवाहकी तिथि निश्चित हो गयी। पर विवाहकी तिथिके दो-तीन दिन पहले लड़केके पिताकी ओरसे अकस्मात् एक दूसरे व्यक्तिके मारफत संदेश मिला कि 'उनको एक अन्य लड़कीवाला बीस हजार रुपये नगद दे रहा है और सब मिलाकर पचास हजार रुपये लगानेको तैयार है। उनको दुःख तो बहुत है और वे चाहते भी थे कि आपकी लड़कीसे ही सम्बन्ध हो, पर अब उनके घरके लोग तथा लड़का भी तैयार नहीं है, इसलिये लाचारी है।' इस संदेशने वज्रपातका-सा काम किया। लड़की १८ वर्षकी हो गयी थी। लड़कीकी माताको इतना दुःख हुआ कि वे बेहोश हो गयीं। कोई उपाय तो था ही नहीं। लड़कीके पिता अत्यन्त विषादग्रस्त थे। वहीं एक मेरे दूसरे परिचित सज्जन थे, जो भगवान्में बहुत विश्वास रखते थे, बड़े मनस्वी थे तथा

इनके मित्र थे। कुछ दवा आदि भी जानते थे। पत्नीको होश आनेपर लड़कीके पिता उन मित्रके पास गये और उनको सारी बातें उन्होंने सुनायीं। वे तुरंत साथ इनके घर आये और लड़कीकी मातासे बोले—'तुम तो भगवान्‌में विश्वास रखती हो' फिर इतनी निराश क्यों होती हो? विश्वास रखो—किसी बड़े मङ्गलके लिये ही भगवान्‌ने यह व्यवस्था की है। वह बहुत दुःखी थी; पर इनके समझाने-बुझानेसे वह कुछ शान्त हो गयी।

ठीक सातवें दिन उसी नगरके एक बड़े धनी व्यापारीके एकमात्र बीस वर्षके निःसंतान लड़केकी स्त्रीका अकस्मात् देहान्त हो गया। अभी छः ही महीने पहले उसका विवाह हुआ था। उन्होंने हमारे सुपरिचित इन मित्रकी लड़कीसे अपने लड़केका सम्बन्ध करनेके लिये अनुरोध किया। दहेज न लेनेकी उनकी प्रतिज्ञा थी। सम्बन्ध हो गया और कुछ ही दिनों बाद अक्षयतृतीयाको विवाह सम्पन्न हो गया। लड़की बहुत अच्छे धनी और सुसंस्कृत खानदानमें चली गयी।

वह विवाह हो जाता तो यह सम्बन्ध नहीं मिलता। अतः भगवान् जो करते हैं, उनके मङ्गल-विधानसे जो कुछ होता है, परम मङ्गलके लिये ही होता है। हम अदूरदर्शी, इसपर विश्वास न करके कोई भी बात मनके प्रतिकूल होनेपर—जो कुछ ही दिनों बाद हमारे सामने महान् मङ्गलके रूपमें प्रकट होकर हमें आश्चर्य और आनन्दमें डुबो देती है—अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं। भगवान्‌के मङ्गल-विधानपर विश्वास कीजिये और नित्य आनन्दमें रहिये।

—मदनमोहन खत्री

इस हाथ दे, उस हाथ ले

(मौनाभिशाप)

साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी॥

गोस्वामी तुलसीदासजीकी इस वाणीकी अक्षरशः आँखों-देखी सत्यताका वर्णन उस दिन भाई गणेशदत्तजी वैद्यने किया, जिसे सुनकर रोमाञ्च हो आया। कल्याणकामियोंकी सजगताके लिये नीचे उसका उल्लेख किया गया है।

भाई गणेशदत्तजीने कहा—बारह वर्ष पूर्वकी घटना है। तब मैं काशीमें पढ़ता था और प्रतिदिन सीधाके लिये रामनगर अपने चौदह साथियोंके साथ जाया-आया करता था। एक दिनकी बात है—नाव खुलनेमें देर हुई, जिससे विलम्बसे आनेवाले यात्रियोंसे नाव ठसाठस भर गयी। नाव खुलते-खुलते दो पुलिसके सिपाही आ धमके। नावको बेतरह भरी देख, नाविकोंने नाव खोल दी। सिपाही डाँटने-धमकाने लगे। पर नाव रुकी नहीं, बढ़ चली। मल्लाह चीखते रहे—'दूसरी नाव तुरंत खुलनेवाली है, आपलोग उसीसे आइयेगा, यह नाव बिलकुल भरी है, अधिक बोझ होनेसे डूबनेका भय है।' किंतु सिपाहियोंने एक न सुनी और वे कूदकर नावमें आ गये। उन्होंने नाव बढ़ानेसे नाविकोंको रोका और यात्रियोंपर दृष्टि दौड़ायी। देखा—अधिकांश विद्यार्थी ही हैं, कुछ सम्भ्रान्त व्यक्ति और दो साधु-वेषधारी बाबाजी। संसारके सुखोपभोगसे उदासीन साधुलोग उनकी मदान्ध-दृष्टिमें अति तुच्छ और दुर्बल प्रतीत हुए। अतएव वे लगे उन्हें नावसे नीचे उतारने। साधु इसके लिये तैयार नहीं थे। निदान, एक सिपाहीने एक साधुको—निरपराध साधुको एक सिपाहियाना चाँटा जमा दिया। सभी यात्री सिपाहीको कोसने लगे। साधुबाबा मौन हो गये! नाव बढ़ चली।

नावके अत्यधिक बोझिल हो जानेसे नाविक भयभीत थे। हवा तेज थी। रह-रहकर जलमग्नताकी आशङ्का होती थी। राम-राम कर बीच धारासे नाव बाहर निकली, पर साधुने मौन भङ्ग न किया। उसके दूसरे साथी संतने कहा—'महात्माजी, कुछ बोल तो दो, कुछ

छोटा-मोटा शाप ही दे दो। मौन क्यों हो गये? क्या इस गरीबको ले ही बैठोगे।' सिपाही संतकी बातोंपर हँसते और मजाक करते। यात्रियोंको बुरा लगता। उत्सुकतासे परिणाम देखते रहे। पर महात्मा मौन रहे, मौन नितान्त मौन।

नाव तटके समीप आ गयी। मल्लाहोंका भय दूर हुआ। बाबाजी मानो मूर्तिमान् कोप बने बैठे रहे और सिपाही प्रसन्न। सहसा धारा तेज हो गयी, कारण घाटकी रक्षाके लिये महाराजने तटबन्ध बनवाये थे और लोहेके बड़े-बड़े नुकीले छड़ गङ्गाजीमें गड़वा रखे थे। तटबन्धसे गङ्गाकी स्वाभाविक धारामें व्याघात पहुँचनेके कारण तीव्रता आ गयी थी। नाव दो ही चार मिनटके बाद उतारकी जगह लगती; पर सिपाहियोंमें इतनी सब्र कहाँ कि किनारा पकड़े। नाव नीचे ठहरावपर जा रही थी कि एक सिपाही नावसे कूदकर छड़ोंके घेरेको पार कर गया। दूसरा जो कूदा तो निशाना चूक गया और ठीक बरछी-से नुकीले एक छड़पर ही मुँहके बल गिरा और गङ्गाकी वेगवती धारामें लगा घिरनई-सी नाचने। छड़ छाती छेदकर पार कर गया। यात्रियोंने आँखें बंद कर लीं। कहना न होगा यह वही सिपाही था, जिसने साधु-अवज्ञा की थी, जिसका फल उसे हाथों-हाथ मिल गया।

—श्रीबनारसीलाल, साहित्यरत्न, विद्याभूषण रामडिहरा (शाहाबाद)

★★★

तीर्थयात्राका महत्त्व और परलोकवादकी सत्यता

'आधुनिक कालमें जन-समुदायका विश्वास तीर्थयात्रा और परलोकवादसे उठता जा रहा है।' परंतु यहाँ एक ऐसी घटनाका वर्णन दिया जा रहा है, जो केवल सत्य ही नहीं है, वरं जिसकी साक्षीके रूपमें राजस्थान राज्यके भीलवाड़ा जिलेके कई व्यक्ति आज भी विद्यमान हैं। जिला भीलवाड़ा, तहसील माँडलमें राजपुरा नामक एक ग्राम है। यह ठाकुर श्रीईश्वरीसिंहजी राठौरके अधिकारमें था। इनके ज्येष्ठ पुत्र भीमसिंहजीका जन्म विक्रमी संवत् १९४१ भाद्रपद कृष्ण ७ को हुआ था। जब इनकी आयु पंद्रह वर्षकी हुई, इन्होंने भी अपने पिताश्रीके साथ सौरभजी (सूकरक्षेत्र), मथुरा, वृन्दावनकी यात्रा की।

यात्रासे लौटते हुए विक्रमी संवत् १९५५ के फाल्गुन शुक्ल ११ को कासगंज (उत्तरप्रदेश) के निकटवाहिनी कालिन्दी नदीमें भी इन्होंने स्नान किया। वहाँ अन्नपूर्णादेवीके दर्शन किये। पुष्कर होते हुए ये अपने निवास-स्थान राजपुरा लौट आये।

राजपुरा आनेके दो वर्ष पश्चात् कार्तिक शुक्ल ११ विक्रमी संवत् १९५७ को भीमसिंहकी मृत्यु हो गयी। मृत्युके उपरान्त शवको दाह-संस्कारके लिये श्मशान-भूमि ले जानेकी तैयारी शुरू हुई। परंतु मृत्युके दो घंटे पश्चात् भीमसिंहके शवमें पुनः प्राणोंका संचार होना लक्षित हुआ और वे स्वस्थ हो गये।

तभी भीमसिंहने अपनी परलोकगमनके समाचार इस तरह वर्णित किये—"गौरवर्णके चार दूत, जिनके चार-चार भुजाएँ थीं, जिनके ललाटपर श्वेत चन्दनके ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक थे, जो बड़े देदीप्यमान प्रतीत हो रहे थे, जिनके चरण पृथ्वीको स्पर्श नहीं करते थे, जिनके दो-दो हाथ ऊपर उठे हुए थे, बड़ी शीघ्रतासे मुझे एक काष्ठके तख्तेपर सुलाकर उत्तरकी तरफ उड़ा ले गये।

काफी दूर जानेके बाद एक विशाल भवन दृष्टिगोचर हुआ। दूत मुझे भीतर ले जानेको ही थे कि ऐसा कहा गया—'इस जीवकी मृत्यु इस समय नहीं है। इसकी तो अभी बहुत उम्र बाकी है। इसे शीघ्र ही

अपनी देहमें वापस पहुँचा दो। अन्यथा इसकी देह जला दी जायगी। मृत्यु तो देवरिया ग्रामनिवासी भीमसिंहकी है। उसको ले आनेके लिये ये काले दूत भेजे जा रहे हैं और इस भीमसिंहने गङ्गा-स्नान, व्रजयात्रा और कालिन्दी नदीमें स्नान किया है। अतः यह वापस तुम्हारे ही ले जाने योग्य है।' यह सुनते ही उसी तख्तेपर वे ही चारों दूत मुझे यहाँ पहुँचाकर अन्तर्धान हो गये और वापस चेतना प्राप्त होनेसे मैं अब स्वयंको स्वस्थ अनुभव कर रहा हूँ।'

उपर्युक्त भीमसिंहके पिताश्रीने इस बातके सत्यकी परीक्षा करनेके लिये, तत्काल ही मङ्गलसिंह नामके घुड़सवारको राजपुरासे पाँच मील दूर स्थित देवरिया ग्राम भेजा। वहाँवाले भीमसिंहका उसी दिन कुछ समय पहले देहावसान हो चुका था और वह घुड़सवार उसके दाह-कर्ममें शरीक होकर वापस आया और ठाकुर ईश्वरीसिंहजीको सब हाल निवेदन किया।

ठाकुर भीमसिंहजी इस समय भी विद्यमान हैं। यदि उनसे कोई सज्जन पत्र-व्यवहार कर जानकारी हासिल करना चाहें तो उनका पता निम्नलिखित है—

श्रीठाकुर भीमसिंहजी, मुकाम राजपुरा,
मार्फत वकील श्रीहरिश्चन्द्रजी,
पो० माडल, जिला—भीलवाड़ा (राजस्थान)

उपर्युक्त घटनासे तीर्थयात्राका महत्त्व और परलोकवादकी सत्यता स्पष्ट सिद्ध होती है।

—जटाशङ्कर जोशी

वेदपाठका प्रभाव

सन् १९३४ में बरहज बाजार (जिला देवरिया) में 'महाविष्णु-यज्ञ' हुआ था। यज्ञके आचार्य भारतप्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय पं० श्रीविद्याधरजी महाराज थे और मैं जनताके प्रतिनिधिरूपमें यज्ञका 'यजमान' था।

बरहज बाजारके यज्ञमें आचार्य श्रीविद्याधरजी महाराजकी वेदमन्त्रोंके प्रति सच्ची निष्ठा और विश्वासका प्रत्यक्ष चमत्कार देखनेका अवसर प्राप्त हुआ था। बरहजमें सरयूतटपर 'महाविष्णु-यज्ञ' हो रहा था। यज्ञके पाँचवें दिनकी बात है। दिनमें चार बजे यज्ञ-हवनकुण्डमें अग्निदेव प्रचण्डरूपमें प्रज्वलित होकर वैदिक विद्वानोंके द्वारा विधिवत् हव्य ग्रहण कर रहे थे। उस समय यज्ञशालामें दिवंगत पूज्य बाबा श्रीराघवदासजी महाराज भी उपस्थित थे। यज्ञशालाके चारों ओर यज्ञप्रेमी जनताकी अपार भीड़ थी। अकस्मात् भयंकर कोलाहल सुनायी दिया कि 'सरयूजीकी आधी धारातक बड़े वेगसे आँधी आ चुकी है और वह यदि इस पार यज्ञशालातक आ गयी तो निश्चित ही यज्ञाग्निकी ज्वाला भीषण रूप धारण कर यज्ञशालाको भस्मीभूत कर देगी, जिससे यज्ञमें बहुत बड़ी बाधा उपस्थित हो जायगी और यज्ञ-विरोधी जनताको ननु-नच करनेका अवसर मिल जायगा।' इस बातको विचारकर सभी लोग भयभीत हो रहे थे। जनताकी घबराहट देखकर यज्ञके श्रीआचार्यजीने बड़ी दृढ़तासे कहा—'आपलोग तनिक भी न घबरायें। वेद-मन्त्रोंके पाठसे तत्काल आँधीका वेग शान्त हो जायगा।' इतना कहकर श्रीआचार्यजीने वेदपाठ प्रारम्भ कर दिया। वेद-पाठके प्रभावसे पाँच ही मिनटमें आँधीका प्रबल वेग शान्त हो गया और आँधी जहाँ-की-तहाँ रुक गयी अर्थात् वह आँधी सरयूजीकी आधी धारातक ही रहकर विलीन हो गयी।

श्रीआचार्यजीके वेदपाठके तात्कालिक प्रत्यक्ष प्रभावको देखकर सभी लोगोंने श्रीआचार्यजीकी सच्ची निष्ठा तथा वेदपाठके प्रभावकी बार-बार प्रशंसा की।

—दिवंगत बाबा सत्यव्रतजी, बरहज (देवरिया)

(महामहोपाध्याय श्रीविद्याधर गौड़स्मारक ग्रन्थसे उद्‌धृत)

बुराईका बदला भलाई करके लेना चाहिये और विष देनेवालेको भी अमृत देना चाहिये

कई वर्ष पहलेकी सत्य घटना है। मुजफ्फरपुरसे पूर्व एक गाँवमें एक प्रसिद्ध धनी महाजन थे। उनके तीन लड़के थे और उनके छोटे भाईके केवल एक लड़का था। संयोगकी बात लड़का जब तीन वर्षका हुआ तो उसके पिता मर गये और उसके एक वर्षके बाद ही माता भी मर गयी। अब उस मातृ-पितृहीन बालकके जीवन तथा पालन-पोषणका भार उस लड़केकी दादीपर ही पड़ा। दादी उसे जी-जानसे पालने लगी, किंतु चाचाजी उस भतीजेको अपने हृदयसे नहीं चाहते थे। इसका प्रबल कारण यह था कि उनके तीन लड़के थे। आधी सम्पत्तिके ये तीन हिस्सेदार थे और इधर लाखोंकी सम्पत्तिका आधा अधिकारी केवल वह मातृ-पितृहीन एक ही लड़का होनेवाला था।

एक दिन उस निर्दयी चाचाने अपनी स्त्रीसे सलाह करके सुबहके समय उस लड़केके भोजनमें विष मिला दिया, किंतु—

जाको राखे साइयाँ मारि सकै नहिं कोय

भोजनकी थाली रखी है। लड़का खानेके लिये जा रहा है, इतनेमें एक कौआ आया और उस थालीमेंसे कुछ भात चोंचमें भरकर भागा, किंतु आँगनमें जाते-जाते वह लोट-पोट हो गया। लड़केकी दादीको यह देखकर मनमें संदेह उत्पन्न हो गया। उसने वह भात उस लड़केको नहीं खाने दिया और एक कुत्तेको बुलाकर उसे खिलाया। भात खाते ही कुत्ता भी तुरंत मर गया। कुछ ही समयमें यह बात बिजलीकी तरह सारे गाँवमें फैल गयी। गाँववालोंने बहुत कुछ जाँच-पड़तालके बाद लड़केके चाचाको दोषी ठहराया और उस लड़केकी रक्षाका सारा भार पक्की लिखा-पढ़ीके साथ उनके ऊपर देकर इस बातको आगे बढ़ने न दिया।

कुछ दिनोंके बाद लड़का जब बालिग हुआ तब अपने जीवनके डरसे उसने

अपने चाचासे अलग रहनेका विचार किया; किंतु धनलोलुप चाचाने उस लड़के (भतीजे) को आधा हिस्सा न देकर चारोंको बराबर-बराबर बाँटनेका विचार किया। इसपर भतीजेने कहा कि 'चाचाजी! मेरा पालन-पोषण आपने किया है, इसके एवजमें मैं अपनी आधी सम्पत्तिमेंसे केवलमात्र आपको दो आने हिस्से देनेके लिये तैयार हूँ। आपके लड़कोंको नहीं।' चाचाने इस बातको कबूल नहीं किया।

जब चाचाने इस बातको नहीं पसंद किया तो भतीजेने हारकर कोर्टमें बँटवारेका मुकदमा दायर कर दिया। बँटवारेसे भतीजेको आधा हिस्सा मिल गया। चाचाजीकी मनोकामना पूर्ण न हो सकी, किंतु उदारचित्त भतीजेने अपने आधे आठ आने हिस्सेमेंसे दो आने उस दुष्ट चित्तवाले चाचाको देकर संतुष्ट किया। यह जानकर उस (भतीजे) की स्त्रीने कहा कि 'एक बार विष देनेपर तो आपने अपनी आधी सम्पत्तिमेंसे चाचाजीको दो आने हिस्सा दे दिया। अब दूसरी बार कहीं चाचाजीकी कृपा हो जाय तो आप अपने घर-द्वार समेत सारी सम्पत्ति ही दे देंगे।' इसपर उसने कहा कि 'तुम नहीं समझती हो, बुराईका बदला भलाई करके लेना चाहिये और विष देनेवालेको भी अमृत देना चाहिये।' स्त्री भी उत्तम कुलकी थी। पढ़ी-लिखी और अच्छी समझवाली थी। अपने पतिदेवकी उदारतापर वह हृदयसे प्रसन्न थी। अतः उसने भी इस काममें किसी प्रकारका विघ्न नहीं किया।

कुछ दिनों बाद चाचाजीके पापके फल-भोगका समय आ गया। चाचाजीके तीनों लड़के पृथक्-पृथक् हो गये। दिन-रात बाप-बेटोंमें झगड़ा होने लगा। अब तो चाचाजीको खाने-पीनेमें भी तकलीफ होने लगी। जिस जायदादके लिये चाचाजीने बड़े-बड़े पाप किये थे, उसी जायदादको अब कौड़ीके दामोंमें बेचना शुरू किया। जब उस सुयोग्य भतीजेने देखा कि घर बरबाद होनेपर है तो उसने तीनों भाइयोंसे कहा कि 'चाचाजी बहुत दुःखी हो गये हैं। आपलोग इनको किसी प्रकारसे

तकलीफ मत दीजिये और इनसे कोई जमीन न ले सके, इसके लिये कोर्टमें एक दरखास्त दे दीजिये।'

उसके कथनानुसार करनेसे बाकी जायदाद बच गयी। परंतु पूर्ववत् स्थितिमें आना उन लोगोंके लिये आकाशकुसुमवत् हो गया। उदार भतीजेने समय-समयपर आर्थिक तथा शारीरिक सहायता देकर अपने चाचाजीकी प्रतिष्ठा-मर्यादाको कुछ भी कम न होने दिया। उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर होनेपर भी खान-पान, विवाह आदि सारे कार्य पूर्ववत् ही चलते रहे।

—पं० रामविलास मिश्र

भगवान्‌की निर्भरता

श्रीगङ्गाजीके पार जानेके लिये नावमें कुछ स्त्री-पुरुष बैठे हुए थे। जब नाव गङ्गाजीके बीचमें पहुँची तो बहुत जोरसे आँधी आयी। नाव हिलने-डुलने लगी और जल भरने लगा। जब नाव डूबनेको हुई तो नावमें बैठे हुए स्त्री-पुरुष घबरा गये। कोई-कोई तो रोने भी लगे। परंतु एक पुरुष बिलकुल निर्भय बैठा हँस रहा था और मन-ही-मन राम-नामका जप कर रहा था। भगवान्‌की कृपासे आँधी बंद हो गयी और नाव डूबनेसे बच गयी। जब नाव पार पहुँच गयी तब जो पुरुष निर्भय बैठा हँस रहा था, उसकी पत्नीने पूछा—'जब आँधी आयी, नावमें जल भरने लगा और नाव डूबनेको हो गयी, उस समय सब घबरा गये, कोई-कोई तो रोने भी लगे। परंतु आप निर्भय होकर हँस रहे थे। इसका क्या कारण था?'

इतनी बात सुनकर उसके पतिने अपनी पत्नीका हाथ पकड़कर गङ्गाजीकी ओर खींचा और कहा—'तुझे अभी गङ्गाजीमें डुबाऊँगा।' यह सुनकर उसकी पत्नी हँसने लगी और बिलकुल नहीं घबरायी। उसके पतिने पूछा—'मैं तुझे गङ्गाजीमें डुबानेको खींच रहा हूँ, परंतु तू हँस रही है और घबरायी भी बिलकुल नहीं। इसका क्या कारण है?' उसकी पत्नीने कहा—'आप मेरे पति (मालिक) हैं। मैं आपकी बन चुकी हूँ, आप ही मेरे शरीरके रक्षक तथा पालन-पोषण करनेवाले हैं। मैं आपके ऊपर निर्भर हूँ; तब क्या आप मुझे डुबा सकते हैं?' उसके पतिने कहा—जैसे तुम मेरे ऊपर निर्भर होकर निर्भय हो, वैसे ही मैं अपने भगवान् श्रीरामजीके ऊपर निर्भर होकर निर्भय हूँ, वही मेरे मालिक हैं, मैं उनका बन चुका हूँ, मेरे रक्षक तथा पालन-पोषण करनेवाले वही हैं, एकमात्र वही हैं। वे मुझे इस गङ्गामें ही डूबनेसे नहीं, भव-सरितामें डूबनेसे भी बचायेंगे। उन्होंने श्रीनारदजीसे कहा है—

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा।
भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी।
जिमि बालक राखइ महतारी॥

(श्रीरामचरितमानस, अरण्य०)

यह सुनकर उसकी पत्नी बहुत प्रसन्न हुई और राम-राम कहती हुई अपने पतिके चरणोंमें गिर पड़ी। —सोनादेवी सालवन

एकान्तरा ज्वरकी रामबाण दवा

जंगलों-खेतोंमें होनेवाली हमारी जड़ी-बूटियोंमें असीम चमत्कारपूर्ण गुण भरे हैं, हम उनका उपयोग जानते नहीं, न करते ही हैं, इसीसे उस लाभसे वञ्चित रहते हैं। विदेशी पद्धतिसे बनी विषपूर्ण ओषधियोंका सेवन करके अपने धन एवं जीवनको बरबाद करते हैं। यहाँ अपामार्गके एक विलक्षण गुणका उल्लेख किया जा रहा है। इसके प्रयोगसे कैसा भी एकान्तरा (एक दिन बीचमें छोड़कर आनेवाला) ज्वर नष्ट हो जाता है। विधि यह है—

जिस रविवारको पुष्य नक्षत्र हो, उसके पहले दिन शनिवारको सायंकाल सूर्यास्तसे पहले अपामार्ग वनस्पतिके पास जाकर उसे जलसे स्नान करावे, फिर रोरी (कुंकुम) चढ़ावे, तदनन्तर जौ-तिल-चावल चढ़ावे। इसके बाद उसकी मूल (जड़) में रँगे सूत (नाला) का लंबा-सा रक्षासूत्र बाँध दे और यह निवेदन करके निमन्त्रण देकर लौट आवे कि 'मैं अपने कार्यकी सिद्धिके लिये कल प्रातःकाल आपको लेने आऊँगा।' दूसरे दिन पुष्य नक्षत्रयुक्त रविवारको प्रातःकाल सूर्योदयके समय जाकर मूल (जड़) ले आवे और साथ ही उसमें बाँधा हुआ रक्षासूत्र भी ले आवे। यह ध्यान रहे, लाते समय कोई टोकाटोकी न करे कि 'तुम यह क्या कर रहे हो?'

इस विधिसे लायी हुई अपामार्गकी जड़को घरमें सुरक्षित रख और जब भी जरूरत हो, उसका उपयोग करे। इस प्रकार एक बार लायी हुई जड़ वर्षोंतक काम दे सकती है। पर यह काम लोभ-लालचसे न करे। विशुद्ध सेवाभावसे ही करे। मेरा तीस वर्षका अनुभव है। यह एकान्तरा ज्वरकी रामबाण दवा है।

रोगीको जिस दिन जिस समय ज्वर आनेकी पारी हो, उस दिन उस समयसे एक-दो घंटे पहले थोड़ी-सी मूल (जड़) उसी रक्षासूत्रसे बाँधकर सात गाँठ दे दे और फिर गुग्गुल या गोघृतकी धूप देकर रोगीके दायें हाथमें (स्त्री हो तो बायें हाथमें) या कण्ठमें बाँध दे। उसी दिन आराम हो जायगा। कदाचित् उस दिन न बंद हुआ तो बहुत जोरसे ज्वर आयेगा; इससे घबराये नहीं। दूसरी पारीसे बिलकुल नहीं आयेगा, यह परीक्षित है।

—पं० छोटेलाल जगन्नाथ चक्कीवाला, श्रीसुदर्शन फ्लावर फैक्टरी, रायपुर दरवाजा काकरिया रोड, अहमदाबाद (गुजरात)

मधुर मानवताके दर्शन

लगभग कुछ वर्ष पहलेका प्रसङ्ग है। उस समयके बड़ोदाराज्यके महेसाना प्रान्त कड़ी विभागके असिस्टेंट कलक्टर श्रीयुत काले साहब प्रातःकालीन बीजापुर लोकल गाड़ीमेंसे अपना सामान उतरवाकर अहमदाबादमें बड़ी गाड़ीकी ओर जा रहे थे। आवश्यक सरकारी कामसे इन्हें बड़ोदा जाना था। वे आखिरी डिब्बेमें थे, अतः वहाँसे उतरकर आगेतक आनेमें समय लगनेकी सम्भावना थी। डिब्बेसे उतरकर आगे बढ़ते समय उन्होंने एक अखबार बेचनेवाले भाईको घबरायी-सी हालतमें खड़े देखकर पूछा—

'क्यों भाई! यहाँ कैसे घबराये-से खड़े हो?' उसने कहा—'साहेब! मैं अपनी पत्नीको प्रसव करानेके लिये अहमदाबाद ला रहा था, परंतु यहाँ डिब्बेमें ही उसके प्रसव होनेका प्रसंग आ गया। इस गाड़ीके डिब्बोंको कुछ ही देरमें साइडिंगमें ले जायेंगे, अतः मुझे क्या करना चाहिये, मैं इसी विचारमें परेशान हूँ।'

काले साहेबने कहा—'स्टेशनमास्टरसे मिलकर उन्हें अपनी स्थिति समझाओ। वे कुछ समयतक यहाँ डिब्बे रुकवा देंगे, फिर तुम फोन करके अस्पतालसे एम्बुलेंस कार मँगवा लेना।'

'परंतु साहेब! मुझ गरीबकी कौन सुनेगा?'

'तुम जाओ तो सही!'

'लेकिन यहाँ किसे खड़ा रखूँ?'

'अच्छा खड़े रहो—मैं व्यवस्था किये देता हूँ।'—कहकर बड़ोदा जानेवाली गाड़ीके खुलनेकी तैयारी होनेपर भी काले साहबने अपने नौकरको कुछ पैसे देकर तथा यह समझाकर कि कहीं इस भाईको अचानक जरूरत पड़

जाय, तो मदद कर देना, वहाँ खड़ा कर दिया और स्वयं बड़ी उतावलीसे स्टेशनमास्टरके पास जा पहुँचे। उनसे कहकर कुछ समयके लिये डिब्बोंको साइडिंगमें ले जानेसे रुकवा दिया और अस्पतालको फोन करके 'एम्बुलेंस कार' मँगायी। एम्बुलेंस कारके आ जानेपर उस भाईको उसकी पत्नीसमेत अस्पताल भेजनेकी व्यवस्था करनेके बाद उन्होंने पूछा—

'क्यों भाई ! अब मैं जाऊँ ? तुम्हारे और कोई काम तो नहीं है ?'

साहेबकी इतनी अधिक सहानुभूति और सँभाल देखकर वह गरीब आदमी तो गद्गद हो गया। आँसूभरी आँखोंसे उसने साहेबका उपकार माना।

धन्य है ऐसे सेवाभाववाले अधिकारीको !

—अमथालाल जगजीवनदास शाह

रामचरितमानसके अखण्ड पाठका प्रभाव

बात मेरे बचपनकी है। मेरे स्वर्गीय पिता पं० प्रयागदीनजी शुक्ल उन दिनों आगरा अवध सूबेके बोर्ड आफ रेवन्यूके सीनियर मेम्बरोंके सिरिस्तेदार थे और गर्मियोंमें उन्हें नैनीताल तथा जाड़ोंमें लखनऊ रहना पड़ता था। बात सन् १९१० की है। हमलोग नैनीतालसे लखनऊ आये थे। उनके दफ्तरकी तमाम मिसलोंके बस्ते, जो उन दिनों ठेलेसे लदकर चारबाग स्टेशनसे छतर मंजिलके समीप कचहरीमें लाकर रखे जाते थे, यथाविधि सदाकी भाँति लाकर रखे गये। परंतु जब पिताजीने उनको गिनवाया तब उन ढेरसे ठेले भरके उतारे बस्तोंमें एक बस्ता कम उतरा, जिसकी मिसलोंके कागजात सबेरे ही किसी बड़े भारी मुकदमेमें पेश होने थे। बोर्डके सीनियर और जूनियर मेम्बरोंके नाम थे—मिस्टर हार्डी तथा मिस्टर पेरी। ये दोनों अंग्रेज आई० सी० एस० अफसर बड़े सख्त और बड़े योग्य माननीय थे। ये तत्कालीन ब्रिटिश राज्यके विश्वासपात्र अधिकारी माने जाते थे।

मेरी स्वर्गीया सौभाग्यवती माता बड़ी ही दयालु और रामायणकी भक्त थीं। नित्य रामायणका नियमित पाठ करतीं और जब कभी परिवारपर कोई संकट पड़ता, तब झटसे अखण्ड रामायणका पाठ लेकर बैठ जाया करती थीं तथा मुझे एवं मेरी बड़ी बहिनको आदेश करतीं कि बैठकर शान्तिपूर्वक सुनते रहें और यदि आवश्यकता पड़े तो उन्हें अवकाश देनेमें सहायक बनें—अस्तु, उस दिन जब संध्याको पिताजी घर लौटे, तब सीधे उदास मन अपनी मेजपर जा बैठे और एकाग्रचित्त होकर उस मेजकी ऊँचाईके बराबर, जो मिसलें चारों ओर रखी थीं, उनका निरीक्षण करने लगे। उदास मन उन्होंने माँको बुलाकर उनसे सब समाचार बताते हुए कहा कि 'हम आज भोजन नहीं करेंगे, कल सबेरे अमुक फाइलके अभावमें साहेब न जाने क्या करें। कल जिस मुकदमेकी पेशी है, उसीका बस्ता गायब है। अफसर न्यायानुसार यही समझेंगे कि रिश्वत लेकर सारे केसकी फाइलें गायब करा दी गयी हैं। उनकी आँखें यह कहते हुए डबडबा आयीं और उन्होंने कहा कि कल जेल जानेकी नौबत है।'

बस फिर क्या था। तत्काल माँने हमलोगोंको बुलाकर अखण्ड रामायण प्रारम्भ कर दिया। रात्रि व्यतीत हो गयी और पिताजी नित्य-कर्मानुसार कचहरीके लिये चल दिये। उनकी गम्भीर मुद्रा मुझे आज भी स्मरण है। यहाँ इतना बताना और आवश्यक है कि पिताजी भगवान् शंकरके और माता श्रीरामसियाके उपासक थे। पिताजी इजलासमें पधारे। साथमें अर्दली लोग भी थे। वहाँ वे चिन्ता-निमग्न झारखण्डेश्वर महादेवका स्मरण करते थे और कुशलपूर्वक उक्त कठिन कालमें उनकी कृपा माँग रहे थे कि इतनेमें न्यायालयके दोनों सज्जन श्रीहार्डी और श्रीपेरी आ पहुँचे तथा न्यायमञ्चपर बैठ गये। उन्होंने पिताजीको उदास और घोर चिन्ताकी मुद्रामें देखते ही प्रश्न किया कि 'क्या तुम्हारा कोई सरकारी बस्ता कहीं खो गया है?' पिताजीने तत्काल उत्तर दिया—'जी हाँ।' तब उसमेंसे सीनियर मेम्बरने संकेत करते हुए कहा कि 'रिटायरिङ्ग रूममें जाकर देखो कि क्या वह वही बस्ता है जो खोया था?' पिताजीने जाकर तुरंत देखा तो वह वही बस्ता था और पिताजीने सहर्ष लौटकर बताया कि 'हाँ, वही बंडल है।' तब उस साहबने कहा कि यह बस्ता मार्गमें कहीं ठेलेसे गिर गया था और इसे स्टेशनमास्टरके किसी आदमीने पड़ा पाया और उनके पास भेजवा दिया। चारबागके स्टेशनमास्टरने देखा कि उसपर सरकारी चिह्न 'बोर्ड आफ रेवन्यू, यू० पी०' अङ्कित था तो उसे उनके पास बँगलेपर भेजवाया। इधर उसी समय जब यह घटना वहाँ हो रही थी, तब माँकी अखण्ड रामायण समाप्त होकर आरती हो रही थी, और हमलोग घण्टा-घड़ियाल बजाते हुए 'आरति श्रीरामायनजी की। कीरति कलित ललित सिय पी की' गा रहे थे— पिताजीने अर्दलीके द्वारा माताजीको सूचना भिजवायी कि उनका खोया हुआ बस्ता मिल गया है, घबरानेकी बात नहीं है। उसके बाद दोपहरको जब वे घर आये तब बताया कि वह बस्ता ठेलेसे मार्गमें खिसककर गिर गया था और अँधियारेमें दिखायी नहीं पड़ा। उन दिनों वहाँपर जंगल था। रेलवेका एक केबिन भी उसी जगह था। चारबागका स्टेशन उन दिनों और तरहका बना था। मार्गमें प्रातःकाल किसी यात्रीने

उस बस्तेको पाकर उठाया और यह समझकर कि उसमें कोई वस्तु मूल्यवान् प्राप्त हो जायगी, उसी जंगलकी एक खाईमें छिपकर खोला और अपने मतलबकी कोई वस्तु न पाकर वह उसी जगह खड्ढेमें विसर्जन करके चल दिया। इसके पश्चात् कोई रेलवे केबिनका कर्मचारी शौचके लिये निकला और उसी ओर जाकर एक खड्ढेमें बैठनेको ही था कि उस खड्ढेसे एक खरगोश निकल भागा। वह खलासी कर्मचारी शिकारी था। उसके हाथमें डंडा था, जिसे उसने फेंककर उस खरगोशके ऊपर चलाया और दौड़ा। वह खरगोश घायल-सा होकर भागकर उसी खड्ढेमें जा गिरा, जहाँ यह बस्ता खुला पड़ा था। वहाँ जाकर उक्त कर्मचारीका खरगोश शिकार लुप्त हो गया, किंतु यह बस्ता मिला। उसने बिखरे कागजोंको एकत्रित करके बाँध लिया और यह सोचकर कि यह सरकारी रेलवेके कागज कहीं रेलसे न गिर गये हों उसे वह अपने स्टेशनमास्टरको दे आया एवं स्टेशनमास्टर साहबने तत्काल उसे बोर्ड आफ रेवन्यूके नामको पढ़कर उसे सीनियर मेम्बरकी कोठीपर भेजवा दिया। परंतु घटनाके अनुसार यह निश्चय है कि भगवद्भक्तका बाल बाँका नहीं हो पाता; क्योंकि भगवान् निज भक्तकी विपत्तिका भञ्जन स्वयं करते हैं। वे प्रभु भक्त-विपत्ति भञ्जनके लिये मानो खरगोश बनकर उसी खड्ढेमें जाकर उस खलासीको ले गये और माताजीकी भावभक्तिपर रीझ गये। इसे कौन इनकार करेगा? ऐसे उदार और भक्तजनोंपर असीम कृपा करनेवाले प्रभुकी जय हो। वे कृपालु सदा सबपर दया करें।

—रामकृपाल शुक्ल

★★★

पाँच लाखसे पचीसका महत्त्व अधिक

मेरे स्व० पिता ठा० करणीसिंहजी राजस्थानमें पूछे जानेवाले सरदारोंमें थे। उनका बचपन कठिनाइयोंमें बीता। परंतु उन्होंने अपने ठिकाने (राज्य) का काम अपने हाथमें लेते ही सब कठिनाइयोंको जीत लिया। वे कुछ ही समयमें समृद्ध जागीरदार कहलाने लगे। उन्होंने अपने जमानेमें बड़े-बड़े धार्मिक तथा सार्वजनिक सेवाके काम किये। उन्होंने अपने जीवनमें ज्यादा नहीं तो कम-से-कम पाँच लाख रुपये इन विविध सत्कर्मोंमें खर्च किये।

इन पाँच लाख रुपयोंके अतिरिक्त पचीस रुपये उन्होंने और खर्च किये, जिनका विशेषरूपसे मैं आज उल्लेख करना चाहता हूँ। यह उस समयका प्रसंग है, जब मैं बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करके घर आया था। तब मैं भी घरका कुछ काम देखने लगा था। दूसरे ठिकानोंकी तरह हमारे ठिकानेमें भी मुकदमे चला करते थे। भूराराम नामक एक व्यक्तिसे जमीन-सम्बन्धी एक मुकदमा चल रहा था। आज उपर्युक्त आदमीके मुकदमेकी पेशीका दिन था, अदालत दूर थी। गाड़ीसे जाना होता था। गाड़ी छूटनेमें केवल एक घंटेका समय शेष था। मेरे पिताजीने जब भूरारामको वहीं ग्राममें ही फिरते देखा तो उसे अपने पास बुलाकर कहा—'आज यहीं कैसे घूम रहे हो? आज तो मुकदमेकी पेशी है।'

उसने उत्तर दिया—'कैसे जाऊँ? वकीलको देनेके लिये पंद्रह रुपये नहीं हैं। पूरे ग्राममें घूम आया, कहीं भी रुपये नहीं मिले।'

यह सुनते ही मेरे पिताने मुझे १५ रुपये लानेका आदेश दिया। मैं जब १५ रुपये लेकर आया तो उन्होंने रुपये मेरे हाथसे अपने हाथमें ले लिये। यह भी एक अनोखी ही घटना थी; क्योंकि जबसे मुझे याद पड़ता है, मैंने उन्हें अपने हाथोंमें रुपये लेते नहीं देखा था। उन्होंने वह १५ रुपये भूरारामको देते हुए कहा—'जा दौड़कर गाड़ी पकड़, कहीं चूक जायगा तो तेरा मुकदमा बिगड़ जायगा।'

ऐसी ही एक दूसरी घटना है, जिसमें पिताजीने १० रुपये म्हादाराम नामके आदमीको हमारे खिलाफ मुकदमा लड़नेके लिये दिये थे।

एक दिन मैंने मौका पाकर पिताजीसे निवेदन किया—'ये गाँवके लोग, जिनसे अपना मुकदमा चलता है, अपनेसे किसी बातमें कम नहीं हैं। वे मेहनत करनेमें अपनेसे कम नहीं, पूरे ग्रामकी सहानुभूति उनके साथ है; क्योंकि वे गरीब हैं और हम धनवान् हैं। इस गरीबीके कारण न्यायालयकी सहानुभूति भी उनके साथ है। अतः इन लोगोंसे या तो मुकदमा लड़ना नहीं चाहिये या फिर इनकी आर्थिक सहायता नहीं करनी चाहिये। क्योंकि मुकदमा जीतनेका एक ही साधन हो सकता है कि उसे लम्बा किया जाय, जिससे इनकी अर्थव्यवस्था असंतुलित हो जाय और फलस्वरूप हम मुकदमा जीत जायँ। जब आप उनकी आर्थिक सहायता कर देते हैं, तो वे मुकदमा क्यों छोड़ने लगे? इस तर्कका आपके पास कोई उत्तर हो तो मुझे समझाइये।'

इसपर उन्होंने कहा—'मैं तेरी तरह पढ़ा हुआ तो हूँ नहीं, इससे तेरे तर्कका उत्तर मैं नहीं दे सकता। मेरी भाषा मेरी भावनाको व्यक्त करनेमें असमर्थ है। पर इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ, तू गलत रास्तेपर है और मैं सहीपर। आगे चलकर तू देखेगा कि हममेंसे कौन सही था।'

और आज मैं देख रहा हूँ कि उनकी बात कितनी सही थी। आज ग्रामका हर व्यक्ति इन पचीस रुपयोंकी गाथा गाता है। ऐसा जान पड़ता है कि इन पचीस रुपयोंके अलावा उन्होंने और कुछ खर्च किया ही नहीं; क्योंकि जिसके मुँहसे सुनो बस, इन्हीं रुपयोंकी चर्चा सुनायी देगी। इन पचीसका पलड़ा पाँच लाखके पलड़ेसे भी कितना भारी है।

—लक्ष्मणसिंह जागीरदार, अढूका

★★★

सद्व्यवहारसे राक्षसीको देवी बना दिया

हरियानेके एक नगरकी कुछ वर्ष पहलेकी बात है। दो भाई थे। दोनोंमें परस्पर बड़ा प्रेम था। पर बड़े भाईकी पत्नीसे देवरकी नहीं पटती थी। उसका स्वभाव बड़ा तीखा था। एक दिन घरमें चोर घुस आये और लगभग दो हजारका गहना बड़े भाईकी स्त्रीका ले गये। उसने देवरपर लाञ्छन लगाया कि इसीने चोरी की है। वह बेचारा निर्दोष था, पर भाभी किसी तरह मानी ही नहीं। उसने गाँवभरमें यह बात फैला दी कि उसका देवर चोर है और वह मेरा गहना चुराकर ले गया। बड़े भाईने अपनी पत्नीको बहुत समझाया-बुझाया कि 'मेरा भाई निर्दोष है', पर वह मानी ही नहीं। वह उसे बदनाम करना चाहती थी। असलमें वह चाहती थी कि किसी तरह उसे घरसे निकलवा दिया जाय। उसके पति इसके लिये तैयार नहीं थे। इसीसे उसने मिथ्या आरोप लगाया था। पर इसमें वह सफल नहीं हुई, क्योंकि पुलिसने असली चोरोंको पकड़ लिया और माल भी बरामद हो गया। अब कुछ वर्षों बाद उसने एक दिन भोजनमें जहर मिलाकर देवरको खिला दिया। जहरने कुछ असर किया, वह बेहोश हो गया। तब बड़ा भाई उसे अस्तपाल ले गया—पर भगवान्‌की लीला अपार है—जिस नौकरने जहर लाकर दिया था, उसने यह जहर लाने तथा उसे खिलाये जानेका सारा हाल उसके पतिसे कह दिया। अस्पतालमें तुरंत इलाज हुआ, उलटी करायी गयी। तुरंत ही उपचार हो गया था, इससे सारा जहर निकल गया। लड़केके प्राण बच गये। अस्पतालवालोंने पुलिसमें रिपोर्ट कर दी। पुलिसने जाँच शुरू की। पुलिसके द्वारा बड़े भाईसे पूछे जानेपर उसने अपनी स्त्रीपर संदेह प्रकट किया। पुलिसने स्त्रीको पकड़ लिया, केस चला। आखिर देवरने कोर्टमें शपथपूर्वक यह बयान दिया कि 'जहर तो मैंने ही मिलाया था; क्योंकि परीक्षामें फेल हो जानेके कारण

मैं आत्महत्या करना चाहता था। जिस नौकरने जहर लाकर दिया था, उसपर भाभी एक दिन गुस्सा हो गयी थी और उसे डाँटा था, इससे उसने भाभीका नाम ले लिया। जहर तो मैंने मँगवाया था और इसके लिये नौकरको मैंने कुछ रुपये इनाम दिये थे। भाभीपर झूठा आरोप लगाया गया है, दोषी तो मैं ही हूँ।' विचार करनेपर अदालतने भाभीको छोड़ दिया और देवरपर आत्महत्याकी चेष्टाका मुकदमा चला तथा उसे छः महीनेकी सजा हो गयी। भाभी अब रो पड़ी, उसका हृदय देवरके त्यागसे उसे बचानेके सत्प्रयत्नसे प्रभावित होकर सर्वथा बदल गया। पश्चात्तापकी आगने उसके हृदयके मलको सर्वथा जलाकर विशुद्ध कर दिया। जेलसे छूटकर आनेपर वह देवरसे बड़ा ही सुन्दर और आदर्श बर्ताव करने लगी। देवरने अपने सद्व्यवहारसे भाभीको राक्षसीसे देवी बना दिया।

—नेकीराम

★★★

स्वार्थरहित न्यायरक्षाका आदर्श प्रयत्न

ई० स० १९०३ की बात है। बम्बईका एक पारसी-परिवार इंग्लैंडमें जाकर बस गया था। वहाँ धर्मान्तर होकर वह परिवार ईसाई हो गया। उस कुटुम्बके उस समयके प्रमुख पुरुष इंग्लैंडके स्टेफर्ड शायर नामक परगनेके वरली गाँवमें पादरी थे।

उनके पुत्रका नाम था जॉर्ज एदलजीबैरिस्टर। इसपर एक कठिन विपत्ति आ पड़ी।

बात ऐसी हुई कि कुछ महीनोंसे वरली और उसके आस-पास रातोंरात कोई मनुष्य आकर गाय, बैल, घोड़े और कुत्तोंको मारने लगा। खेतीप्रधान गाँवोंमें पशुहत्या लगभग मनुष्य-हत्या-जैसी ही मानी जाती है।

पुलिसने बड़ी खोज की, पर कहीं सफलता नहीं मिली। पशुओंकी हत्या तो होती ही रही।

अन्तमें एक दिन पुलिसको एक बेनामी पत्र मिला, जिसमें लिखा था, इस कामको करनेवाला वरली गाँवका काले पादरीका लड़का जॉर्ज एदलजी है। पुलिसने जॉर्जको गिरफ्तार कर लिया।

आधी रातकी इन काली करतूतोंका प्रत्यक्षदर्शी साक्षी तो कहाँसे मिलता? परंतु जॉर्ज एदलजीमें एक आदत थी। वह जल्दी सो जाता और छः घंटे सोकर घूमने निकल जाता। इससे उसपर संदेह होनेके कारण केवल उस बेनामी पत्रके आधारपर ही जॉर्ज एदलजीपर मुकदमा चला। भारतीयोंके घोर विरोधी एडवर्ड सप्तमका युग था। अतएव इंग्लैंडमें काले-गोरेका पर्याप्त भेद था। यहाँ भी इस रंग-भेदने काम किया। जॉर्ज एदलजीको सात वर्षकी सख्त सजा हो गयी। उच्च न्यायालयमें अपील भी खारिज हो गयी। सजा कायम रही और युवक भारतीय बैरिस्टर गाँवके लोगोंके मनमें घोर और शापित कृत्योंके लिये जेलमें दिन काटने लगा।

समाचारपत्रोंमें खबर छपी इंग्लैंडके बहुत-से लोगोंको यही लगा कि इसमें कोई खास बात नहीं है। परंतु एक अंग्रेज सज्जनको यह चीज बहुत बुरी लगी। वे थे सर अर्थर कोनन डॉइल। आजतकके

डिटेक्टिव साहित्यमें सर्वोत्तम डिटेक्टिव 'शेरलाफ होम्स' ग्रन्थके रचयिता—इन सज्जनको इस समाचारसे बड़ा क्षोभ हुआ।

गाँठके पैसे खर्च करके वे एक साधारण मजदूरके वेशमें वरली गये। उन्होंने वहाँ जाँच शुरू की—जॉर्ज एदलजीका नाम बताकर पुलिसको पत्र किसने लिखा? और वह इस विषयमें क्या तथा कितना जानता है········?

वरली और उसके आसपास इन्होंने महीने-महीने, दो-दो महीनेके अन्तरसे डेढ़ वर्षतक अक्षरोंकी पहचान जाननेकी चेष्टा की।

डाकके कागज········तीन महीने उन्होंने वरलीमें एक डाकियेके छुट्टी जानेपर उसकी जगह डाकियेका काम किया। बिल, कागज, लेख, छोटे-बड़े आवेदनपत्र, गाँवकी शिकायतें आदिपर किये गये लोगोंके हस्ताक्षरोंको मिलानेके बहाने।

छः महीने बाद उन्होंने खोज निकाला कि पुलिसको बेनामी पत्र लिखनेवाला आदमी लुई नामका एक खेत-मजदूर है।

इस खेत-मजदूरका अपने मालिकके साथ झगड़ा हो गया था। उसने मालिकके पशुओंको मार डालनेका निश्चय किया था; परंतु अकेले मालिकके पशुओंको मारनेसे उसपर सीधा संदेह होनेकी सम्भावना थी, इससे उसने गाँवभरके पशुओंको मारनेका रास्ता अपनाया था।

लुई बीच-बीचमें अपनी फूफीके घर रहने जाता। पशुवधकी घटनाके समय लुई जिन-जिन तारीखोंको फूफीके यहाँ रहा था उन तारीखोंके साथ पशुवधकी तारीखें मिलायी गयीं तो पता लगा कि जिन दिनों लुई वहाँ रहा, उन दिनोंमें कोई पशु नहीं मारा गया। जाँच करनेपर यह भी मालूम हुआ कि लुई एदलजीके-जैसे ही कपड़े और जूते पहनता है।

उन्होंने जेलमें एदलजीसे मुलाकात की। वहाँ पता लगा कि एदलजीकी आँखें बहुत कमजोर हैं। वह दस-बारह फुटसे अधिक दूरकी चीज नहीं देख पाता।

वे एक बार लुईके घरमें चले गये। वहाँ उन्हें एक खास तरहका छुरा दिखायी दिया, जिसका पशुओंके डाक्टर पशु चीरनेके लिये उपयोग किया करते हैं।

इस जाँचके बाद वे पुलिससे मिले। परंतु पुलिसने तो एदलजीको पकड़कर उसे सजा करवायी ही थी; अतः उसने फिरसे फाइल खोलनेसे इन्कार कर दिया। उन्होंने होम मिनिस्टरको लिखा, पर होम मिनिस्टरने बीचमें पड़ना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने उच्च न्यायालयमें मुकदमा फिरसे चलानेके लिये आवेदनपत्र उपस्थित किया, परंतु न्यायालयने उसे रद्द कर दिया।

फिर उन्होंने पार्लमेंटमें प्रश्न पूछे जानेका प्रयत्न किया। परंतु राजा एडवर्डके राज्यमें पार्लमेंटका कोई भी सदस्य इस काले भारतीयके लिये प्रश्न पूछनेको तैयार नहीं हुआ।

तब सर अर्थर कोनन डाइलने स्वयं कमर कसी और अपने हस्ताक्षरके साथ उन्होंने 'डेली टेलीग्राफ'में लेखमाला आरम्भ की। इसमें उन्होंने वरलीके पुलिसविभाग और इंग्लैंडके गृहविभागको आड़े हाथों लिया और यह आरोप लगाया कि पुलिसकी प्रतिष्ठा बचानेके लिये ही इस घोर अन्यायके सामने आँखें मूँद ली गयी हैं।

उनकी भाषा ऐसी तीव्र और आरोप इतना सीधा था कि गृहमन्त्रीके पास तीन ही विकल्प रह गये—'या तो सर अर्थर कोनन डाइलपर केस चलावें या जॉर्ज एदलजीके केसकी पुनः जाँच हो अथवा वे स्वयं त्यागपत्र दें।'

पार्लमेंटमें और बाहरमें बड़ा हो-हल्ला मचा। आजतक इंग्लैंडके न्यायतन्त्रपर ऐसा सीधा आरोप किसीने नहीं लगाया था। पार्लमेंटमें बहुत गरमा-गरमी होनेके बाद उसी दिन गृहमन्त्रीने त्यागपत्र दे दिया।

दूसरी ओर इस केसकी जाँच करनेवाले पुलिस अधिकारीने भी त्यागपत्र दे दिया और तीसरी ओर लुई वरलीसे भाग गया।

आखिर सरकारको इस केसकी फिरसे जाँच करनेकी आज्ञा देनी पड़ी। लार्ड चीफ जस्टिसके न्यायालयमें स्पेशल अपीलके रूपमें

इसका फिरसे विचार हुआ और कोनन डाइलके दो-दो वर्षके अनवरत प्रयत्नके फलस्वरूप जॉर्ज एदलजी सर्वथा निर्दोष और निष्कलङ्क रूपमें छूट गया।

न्यायतन्त्रकी शिथिलताके कारण अन्यायके शिकार होनेके बदले सरकारने एदलजीको पाँच हजार पाउंडकी रकम मुआवजेके रूपमें प्रदान की। एदलजीने सर अर्थर कोनन डाइलसे और नहीं तो केवल खर्चमात्र ले लेनेकी प्रार्थना की, परंतु उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया।

'शेरलाक होम्स'के अमर निर्माता सर कोनन डाइलका हमलोगोंपर इतना ऋण है। 'अखण्ड आनन्द'

—गुणवन्तराय आचार्य

धन पराव विष ते विष भारी

'दूसरोंके धनको घोर विषके समान समझना चाहिये'—आजके युगमें इस बातको समझने तथा व्यवहारमें लानेवाले बहुत ही थोड़े रह गये हैं; तथापि इस पुण्यभूमिमें अब भी इस विषयमें हमारी आप-बीती एक घटना इस प्रकार है—

गत ३०-८-६२ को मेरी माता एवं बहन एक स्थानीय औषधालयसे वापस घर लौट रही थीं। मेरी बहन एक सोनेका गुलेबंद हार पहने थी। उक्त हार रास्तेमें कहीं गिर गया। घर आनेपर विदित हुआ कि हार कहीं गिर गया है। फिर तो पिताजी, माताजी, मैं तथा बहनने सारा रास्ता खोज डाला। पर कहीं कुछ पता न चला। दिनके लगभग दस बजे हार गिरा था। बहुत खोजनेके बाद हमलोग निराश हो गये। पिताजी, यह जानकर कि सोनेका हार औरतोंके सुहागका प्रतीक है, अधिक चिन्तित थे। वे दौड़े-दौड़े नूतन प्रेस भुसावलके कार्यालयमें गये और पाँच हजार नोटिस उन्होंने पूरे शहरमें बँटवाये। नोटिसमें हार लानेवालेको सौ रुपयेका इनाम घोषित किया गया था।

उसी दिन एक सज्जन सायंकाल ७ बजे हमारे नोटिसमें दिये पतेके अनुसार हमारे घर पधारे और उन्होंने सूचित किया कि हार मेरे भाईको मिला है, आपलोग चलें और ले आयें।

हमलोग बड़ी उत्सुकतासे उन सज्जनके घर गये और हार ले आये। सौ रुपया इनामकी रकम (यद्यपि वे सज्जन लेनेसे इन्कार कर रहे थे, फिर भी हमलोगोंने बहुत दबाकर) उन्हें लेनेको बाध्य किया। उन सज्जनकी ईमानदारी तथा सत्यनिष्ठा देखकर सभी लोग अवाक् रह गये।

—श्रवणकुमार अग्रवाल भुसावल

रामरक्षास्तोत्र और हनुमानचालीसा

मई ६३ के 'कल्याण'में 'रामरक्षास्तोत्रसे लाभ' पर मैंने लिखा था। इसकी सिद्धिकी विधिके बारेमें पंजाबसे लेकर बंगालतक तथा हिमालयसे लेकर विन्ध्याचलतकके हिंदीभाषाभाषी अनेक भाई-बहिनोंने पत्रोंकी झड़ी लगा दी है। इन पत्रोंके पढ़नेसे उनमें 'कल्याण' पढ़नेका जो चाव तथा आध्यात्मिक प्रयोगका जो उत्साह देखनेको मिला, उससे मुझ नौसिखुआकी 'कल्याण'में रुचि और बढ़ गयी है। उन प्रेमी पाठकोंके हितार्थ स्तोत्र एवं पाठकी सिद्धिका कुछ अनुभव देकर उनसे अलग-अलग पत्र न लिखनेके लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

'रामरक्षास्तोत्र' जैसा 'कल्याण'में निकला था, उसकी झटसे मैंने एक साफ कागजपर नकल कर ली थी। फिर नित्य प्रातः स्नान, संध्या-तर्पण तथा भगवान् रामका पञ्चदेवताके साथ पूजन करनेके बाद उस स्तोत्रका ग्यारह बार जोरसे पाठ करता था। नवरात्रके पहलेतक वह पाठ एकदम शुद्ध-शुद्ध कण्ठस्थ हो गया, जिससे नवरात्र चढ़ते संकल्प आदि यथाविधि करके मैं लगातार नौ दिनोंतक एक-सा पाठ करता रहा। उस समय मैं यथासम्भव यम-नियमपूर्वक रहता था। सबसे बढ़कर मेरी दीनता थी कि कोई दूसरा उपाय मेरे लिये नहीं था। ऐसा करनेपर मैंने मान लिया कि मुझे स्तोत्र सिद्ध हो गया; क्योंकि मेरी दशामें पूर्ण परिवर्तन हो चुका था। जिस वृद्धा मातापर मैंने इसका प्रयोग किया, वे भी दवासे दूर भागती हैं। एक रामनामकी ओषधिसे काम लेती हैं, इसीसे उनपर मेरा प्रयोग पूर्ण सफल रहा। पूर्ण दीनता आनेपर ही दीनबन्धुका बन्धुत्व प्राप्त होता है, ऐसा मेरा विश्वास है। ऐसे दीनके लिये 'रामरक्षास्तोत्र' हो तो फिर कहना ही क्या। पर कितने ही पाठक ऐसे होंगे, जिन्हें संस्कृतका उच्चारण कठिन मालूम पड़ता है। उनके लिये 'हनुमानचालीसा' का पाठ ही उत्तम होगा। नीचे उसकी सिद्धिके प्रयोगका अपना अनुभव दे रहा हूँ।

'१९५९ ई० में मेरी कुछ सिकमी जमीनकी मकई कुछ मुसलमान भाइयोंने जबरदस्ती काट ली। स्कूलसे जब गाँव पहुँचा तो लोग

धिक्कारने लगे। पत्नीने भी पूजा-पाठके समय ताना दिया। मैं रो पड़ा। इसी समय मनमें आया कि 'आजीवन जिस पथसे चला हूँ, उसी पथसे मैं मुसलमान भाइयोंका प्रतीकार करूँगा। शेष खेतको अपने काटूँगा।' इसके लिये हनुमानचालीसाका शतबार पाठ किया। जलपान करके खेतकी ओर चला। पत्नी घबरायी। मेरे भाईको तथा एक मजदूरको साथ कर दिया। मैं बराबर हनुमानचालीसा बड़बड़ाता हुआ ग्यारह बजे खेतपर पहुँचा। कहीं कोई नहीं था। आँखें उठायी तो सामने हनुमान्‌जीकी एक विशाल मूर्ति एक पैर दूसरी जाँघपर टेके सुरसाके सामनेवाले विशालरूपमें दिखायी दी। मैंने एक विचित्र स्फूर्ति अनुभव की। खचाखच अपने हाथों मकई काटने लगा। पर मेरा भाई और मजदूर भयभीत चारों ओर घूम-घूमकर देखने लगे। वे बीच-बीचमें काटते भी जाते थे। लगभग तीन घंटेतक हमलोग काटते रहे; मैं बड़े उत्साहमें था और बार-बार उनसे कह रहा था कि देखो सामने हनुमान्‌जी स्वयं हमारी रक्षामें हैं। पर वे देख नहीं रहे थे और 'बोझ ढो लेंगे' कहकर वे मुझे खेतपरसे हट जानेके लिये विनय करने लगे; क्योंकि कुछ शोर-गुल बगलके मकई-खेतमें होने लगा था। मैंने उनसे कहा कि 'जबतक मैं हूँ, बोझ ढोकर ले जाओ, नहीं तो आपत्तिकी आशङ्का है।' मुसलमानोंकी ओरसे एकाध आदमी झाँकी देकर चला गया। बोझ ढोनेमें काफी समय लग गया। जब एकाध बोझ रह गया, तब मेरा एक धोबी मित्र आया और वह मुझे वहाँसे खींच ले चला। मैं उसके साथ चला कि वह विशाल मूर्ति ओझल हो गयी और चारों ओरसे 'अल्ला हो अकबर'का नारा लगाते बाईस मुसलमान नौजवान बर्छा-भालोंके साथ हमारे चारों ओर थे। हम कुछ सँभलें, इसके पहले वे धड़ाधड़ मेरे धोबी मित्रको मारने लगे और मुझे उठाकर सघन मकईमें ले गये। मेरे भाईको एक ओर पकड़ रखा। मैं आँखें बंदकर अब भी 'जै हनुमंत संत हितकारी' गुनगुना रहा था। इतनेमें ही बाहरसे आवाज आयी—'महाबीर बजरंगबलीकी जय।' और कुछ मुसलमान घबराये आये और बोले—

'क्या आप हिंदू-मुसलमान-दंगा कराना चाहते हैं?' मैंने कहा कि 'जल्दी मुझे जहाँसे उठाकर लाये हो, वहीं रख दो नहीं तो अनर्थ हो जायगा।' उन्होंने वैसा ही किया और साठ-सत्तर जवान हिंदू, जो पड़ोसके गाँवसे मेरे वधका समाचार सुन आ जुटे थे, मेरे इशारेपर वहीं नौ-दो ग्यारह हो गये। बात यह हुई कि पड़ोसके हिंदू भाइयोंने मेरे मजदूरसे जब यह हाल सुना तब वे एकाएक जोशमें आ गये थे। पर मेरी तथा मुसलमान भाइयोंकी एक दूसरी ही झाँकी आँखोंके सामने थी, जिसके बल आज भी ये मुसलमान भाई मेरे सहयोगी बने हुए हैं। अस्तु, 'एक भरोसा, एक बल' बन जानेपर हरिका कोई भी नाम चमत्कार कर सकता है। जरूरत है दीनताकी तथा विश्वासकी।*

★★★

* श्रीरामरक्षास्तोत्र एवं हनुमानचालीसाके सम्बन्धमें बहुत-से लाभ प्राप्त होनेके अनुभव हमारे पास और भी आये हुए हैं।

—सम्पादक

प्रत्युपकारके लिये अद्भुत त्याग

देश-विभाजनके पूर्व मेरे परम मित्र ······· लाहौर, एकाउन्टेन्ट जनरल कार्यालयमें आडीटर थे। इनका जीवन बहुत सादा था—आठ पहरमें एक बार भोजन करना, ब्राह्ममुहूर्तमें जागना, स्नान करना और फिर ध्यानयोगमें लीन हो जाना। इनकी ऐसी दिनचर्या देखकर मैं उनकी ओर आकर्षित हुआ। बातों-ही-बातोंमें इन्होंने बताया कि ये जब छोटी अवस्थामें अनाथ हो गये, तब इनका केवल एक सहारा मामाजी रह गये, जो नारोवाल (स्यालकोट जिला) में अध्यापक थे। उन्होंने भानजेकी शिक्षाका प्रबन्ध किया और बी० ए० तक इन्हें पढ़ाया। फिर कलकत्तेमें आर्डिनैन्स डिपोमें काम दिलवाया। वहाँसे स्थानान्तरित होकर लाहौर आये। इनके मामाजी बहुत योग्य पुरुष थे और हिसाबके मास्टर होते हुए संस्कृत, उर्दू , फारसीके भी विद्वान् थे। उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीताका उर्दू नजममें अनुवाद किया था, जिसकी एक प्रति मेरे पास भी है। समय व्यतीत होता रहा, लाहौर आनेसे पहले इनके मामा कठिन रोगसे ग्रस्त हो गये। उनकी सेवाके लिये वे कलकत्तेसे नारोवाल आये और खूब तन-मन-धनसे सेवामें लग गये। परंतु उनके जीवनकी समाप्तिका समय समीप आ गया था। इस कारण सभी ओषधियाँ और चिकित्साएँ रोग-निवारणमें असमर्थ ही रहीं। एक रात्रिको जब वे अकेले थे, तब उन्होंने अपने भानजेको पास बुलाकर कहा—'बेटा! मैंने तुम्हारी यथाशक्ति सेवा की है। अब मैं इस असार संसारसे विदा हो रहा हूँ। मेरी एक अन्तिम इच्छा है, यदि तुम उसे पूर्ण कर सको तो मैं प्रसन्नतासे इस शरीरको छोड़ सकूँगा।' ········ जीके नेत्र अश्रुओंसे भर गये और उन्होंने गद्गद वाणीसे कहा—'मामाजी! एक इच्छा क्या, मैं तो आपपर अपना जीवन भी न्योछावर करनेको तैयार हूँ। यदि मुझे यह शुभ अवसर प्राप्त हो तो मेरे-जैसा कौन सौभाग्यशाली हो सकता है?' 'बेटा! प्रसन्न रहो! मुझे तुमसे यही आशा थी।' मामाजीने कहा। 'तुम जानते ही हो मेरे ऊपर ऋणका बड़ा भार है। आय थोड़ी होने और तुम्हारी मामीके रोगग्रस्त रहनेके क़ारण मैं अपनी जिंदगीमें ऋणसे मुक्त नहीं हो सका। अतः मैं चाहता हूँ कि मेरा यह ऋण तुम अपनी आयसे पूरा चुका दो।' इन्होंने तुरंत अपना ही दायाँ हाथ उनके दायें हाथमें देकर प्रतिज्ञा कर डाली कि 'मैं

जबतक आपका ऋण न उतार डालूँगा, तबतक आराम नहीं करूँगा।' मामाजीके चेहरेपर हर्षकी रेखा दौड़ गयी और कुछ ही समयके पश्चात् उनके प्राणपखेरू उड़ गये। अब इनकी परीक्षाका समय आ पहुँचा। इनके ऊपर दो मामियोंके और अपनी पत्नीके पालन-पोषणका भार था। विचारवान् तो ये थे ही। सोचते-सोचते इस परिणामपर पहुँचे कि यदि मैं गृहस्थके चक्करमें फँस गया और अपने बाल-बच्चोंके लालन-पालनमें लग गया तो स्वर्गीय मामाजीके सामने जो प्रतिज्ञा ऋण उतारनेकी की थी, वह पूर्ण न होगी। अतः ये कलकत्तेके एक प्रसिद्ध बंगाली महोदयके पास गये और प्रार्थना की कि मुझे बच्चा पैदा करनेके अयोग्य बना दिया जाय। उन दिनोंमें परिवार-नियोजनकी योजना नहीं थी। डाक्टर साहब एक नवयुवकके मुखसे ऐसी अद्भुत बात सुनकर चकित रह गये। उन्होंने कहा कि 'मेरे पास फिर एक महीने बाद आना।' महीना पूरा होनेपर जब ये फिर डाक्टरके पास पहुँचे तब फिर डाक्टरजीने कहा—'पंद्रह दिनके बाद आना।' पंद्रह दिनोंके पश्चात् फिर ये गये तो डाक्टरने इन्हें अपने इरादेमें पक्का देखकर पोटैशियम परमैंगनेट (Potassium Permanganate) चालीस दिन खानेको कहा और साथ ही यह भी कह दिया कि एक बार ऐसा करनेके बाद फिर वे पहली स्थितिमें कदापि नहीं आ सकेंगे।........जीने इस कोर्सको पूरा किया और स्वयं कामवृत्तिको तिलाञ्जलि दे दी। अब इन्होंने अपनी धर्मपत्नीसे कहा कि अब हम-तुम पति-पत्नीके रूपमें नहीं रह सकेंगे। यदि तुम्हें मित्रतासे रहना हो तो बतलाओ, नहीं तो, अपना हक लेकर पुनर्विवाह कर लो। वह देवी भी तप और त्यागकी मूर्ति थी, उसने कहा कि 'मैं तो आपके सङ्ग ही रहकर जीवन व्यतीत करूँगी।' बस, फिर क्या था। दोनों मामियोंकी, अपनी धर्मपत्नी और माताकी सेवा करते हुए इन्होंने कुछ ही वर्षोंमें अपने स्वर्गीय मामाजीका सारा ऋण पाई-पाई चुका दिया। धन्य हैं ऐसे महापुरुष, जो पवित्र सेवा-यज्ञमें अपने जीवनके सारे सुख, आराम तथा आनन्दकी आहुति देकर आदर्श उदाहरण उपस्थित करते हैं।

—योगेन्द्रराज भंडारी, बी० ए०

★★★

सबल वायुजनित सिरदर्दकी दवा

सबल वायुके कारण नेत्रशूल होकर सिरमें भयानक दर्द होता है और इस रोगसे पीड़ित मनुष्य सदाके लिये नेत्रहीन हो जाता है। एक तेल इस रोगकी अचूक दवा है, इससे बहुत-से रोगी रोगमुक्त हो चुके हैं। नुसखा नीचे लिखा जाता है; पर कोई भी सज्जन इससे पैसे पैदा करनेकी चेष्टा न करें। विशुद्ध सेवाभावसे ही इसका प्रयोग करना-कराना चाहिये। नुसखा निम्नलिखित है—

हल्दी, राल, लोबान, असली कपूर, कचूर, इलायची सफेद, मैनफल, छरीला, लौंग, बालछड़ सुगन्धवाला, लाख, पीपल—प्रत्येक एक तोला, नागरमोथा, रतनजोत—प्रत्येक दो-दो तोले तथा केसर असली एक आनाभर एवं कस्तूरी दो रत्ती। केसर, कस्तूरी और कपूर—इन तीन चीजोंके अतिरिक्त शेष सब चीजोंको कूटकर रख ले। फिर शुद्ध काले तिलका दो सेर तेल कढ़ाईमें डालकर उसमें कूटी हुई सब चीजें मिला दे और मन्द-मन्द आँचसे पकाये। जब तेल पककर तैयार हो जाय, तब उतारकर उसे कपड़ेसे छान ले। तदनन्तर ठंडा होनेपर उसमें कपूर, केसर और कस्तूरीका चूर्ण मिला दे। बस, तेल तैयार हो गया। इस तेलको रोज धीरे-धीरे सिरमें मालिश करे। कुछ ही दिनोंमें नेत्रशूल और सिरदर्द मिट जायगा।

—सत्यनारायण शुक्ल, स्थान सरोसा प्राचीन, पो॰ सदना, जिला सीतापुर

हेनरी जेम्स और आँसू

नवयुगके अंग्रेजी उपन्यासकारोंमें हेनरी जेम्स (१८४३—१९१६) का स्थान सर्वोच्च माना जाता है। संयोगवश उनका अपने एक पड़ोसीसे मनमुटाव हो गया, जो यहाँतक बढ़ा कि आपसी बोलचाल, दुआ-सलाम सब बंद हो गयी। कभी भूलसे एक-दूसरे सामने आ भी जाते, तो मुँह फेर लेते थे। एक दिन उस पड़ोसीके किसीकी मृत्यु हो गयी। लोगोंने आश्चर्यसे देखा हेनरी जेम्स सारे भेद-भावको भुलाकर अपने पड़ोसीको सान्त्वना देनेके लिये उपस्थित थे। एक महाशयसे न रहा गया। उन्होंने चकित होकर पूछा, 'जेम्स! तुम कहाँ?' 'जहाँ आँसू वहीं मैं।' जेम्सने उत्तर दिया—'यह कैसे सम्भव है कि आँसू गिरें और जेम्स पोंछने न जाय।'

अनजानमें कम कीमतपर वस्तु बेच देना मूर्खता है तो जानकर कम कीमतपर ख़रीद लेना अपराध है

हेनरी थोरो (१८१७—१८६२) अमेरिकाके प्रधान चिन्तक एवं विचारक माने जाते हैं। इन्हींका एक निबन्ध है Civil Disobedience (सविनय आज्ञाभङ्ग), जिसमें इन्होंने सत्याग्रहकी रूप-रेखा दी है। महात्मा गान्धी थोरोसे बहुत प्रभावित थे और इन्हींके निबन्धके आधारपर उन्होंने अपने १९३० वाले आन्दोलनका नाम 'सविनय आज्ञाभङ्ग आन्दोलन' (Civil Disobedience movement) रखा था।

थोरो स्वयं भारतीय विचारधारासे बहुत प्रभावित थे। उन्होंने अपने निबन्धोंमें जगह-जगह कालिदास, विष्णुपुराण, हरिवंशपुराण इत्यादिके उद्धरण दिये हैं। भारतीय विचारधारासे ही प्रभावित होकर वे लगभग दो वर्षतक जंगलमें आश्रम बनाकर रहे। इन्हीं दिनों उन्होंने एक किसानसे कुछ जमीन खरीदी। सौदा बहुत लाभका था। किसानको

इससे पश्चात्ताप हुआ कि उसकी जमीन सस्ते दामोंमें निकल गयी। वह अगले दिन रात्रिमें थोरोके पास आया और गिड़गिड़ाते हुए कहने लगा—'महाशय! वह जमीनका सौदा वापिस कर दें। मेरी स्त्री बहुत नाराज हो रही है।' 'कहीं बिका हुआ सौदा वापिस होता है?' थोरोने उत्तर दिया—'महाशय! आप उचित हर्जाना ले लें। मैं गरीब आदमी हूँ। मेरे पास इससे अधिक नहीं है।' दस डालर थोरोकी ओर सरकाते हुए किसानने कहा।

'जब तुम गरीब हो तो ये दस डालर क्यों दे रहे हो?'

'अपनी मूर्खताका दण्ड। अनजानमें बाजारभावसे कमपर अपनी चीज बेच देना मूर्खता नहीं तो और क्या है' किसानने कहा। 'अनजानमें बाजारभावसे कमपर अपनी चीज बेच देना मूर्खता है तुम्हारी निगाहमें, तो फिर बताओ जान-बूझकर उचित मूल्यसे कममें कोई चीज ले लेना क्या है। कृषक! तुम जो कुछ कहते हो वह सर्वांशमें तो ठीक नहीं है फिर भी मैं समझता हूँ कि मैंने जान-बूझकर उचित मूल्यसे कममें तुम्हारी जमीन लेकर अपराध किया है। धन्यवाद! तुम्हारी जमीनका सौदा वापिस और तुम अपने ये दस डालर भी लेते जाओ। गलती मेरी और हर्जाना तुम दो!' थोरोने उत्तर दिया।

—राजेन्द्रप्रसाद जैन

★★★

एक अन्नदाता

बात उस समयकी है, जब देशमें अनाज-बंदी जारी थी। हमारा परिवार काफी बड़ा था। रसदकी दूकानसे सप्ताहमें एक बार अनाज मिलनेकी व्यवस्था थी। एक सप्ताहके लिये हमें जो अनाज मिलता, वह हमारी आवश्यकताको देखते बहुत ही कम होता था। बड़ी कठिनाईसे तीन-चार दिन चलता। शेष दिन अत्यन्त अभावमें गुजरते। पेटके लिये बाध्य होकर ब्लैक-मार्केटकी शरण लेनी पड़ती थी। दुगुने दाम देकर भी काम बन जाय तो बड़ा भाग्य—ऐसी अवस्था थी। पर वैसा भी कठिनतासे हो पाता था।

दिन-प्रतिदिन पैसोंका मूल्य घटता जा रहा था। बदलेमें अनाजके भाव बढ़ते जा रहे थे। भूखसे मरनेवाले मनुष्योंका रुपयोंसे पेट नहीं भरता। उन्हें तो आवश्यकता है एकमात्र अन्नदेवकी। अतएव मुँहमाँगे दाम देकर भी सहजमें पेट-पालन नहीं होता था। पर ब्लैक-मार्केटसे अनाज मिलनेमें भी विघ्न आने लगे। कुछ समय बाद पैसा भी अन्न-प्राप्ति करवानेमें असमर्थ होने लगा। अन्तमें एक दिन वह समय आ ही गया, जिसका भय मेरे मनमें पहलेसे ही बना हुआ था। उस दिन हमारे घरमें अनाजका एक दानातक न था। राशनका अनाज किसी तरह कलतक चला था। अब बिना सप्ताह बदले वहाँ अन्न मिलनेकी गुंजाइश नहीं थी। ब्लैकवालोंके पास भी अन्नका अभाव हो गया था। अतः सुबहसे ही अनाजकी खोज जारी कर दी गयी, पर जो भी बाहर जाता, निराश होकर खाली हाथ लौट आता। दोपहरतक कुछ बनते न देखकर संध्याको कुछ-न-कुछ मिल ही जायगा—इस निराधार आशासे जी कड़ा करके दोपहरका समय बिना भोजनके निकाल दिया।

सुबह जो हवा थी, वही संध्याको भी कायम है। इस बातका निश्चय करनेके लिये हमें कुछ कम प्रयास नहीं करने पड़े। किंतु अब कलेजा मुँहकी ओर आने लगा। सब लोग भूखसे व्याकुल होने लगे। किस प्रकार अन्न प्राप्त करें? इस विकट प्रश्नने हमें चक्करमें डाल दिया। इसी समय—

स्व० श्रीशिवाजी लाड—जिनसे हमारा वर्षोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध था, अकस्मात् हमारे घर आये। पिताजीसे अपने पूर्वजीवनकी कुछ पुरानी बातें करनेमें उन्हें विशेष आनन्द आता और इसलिये वे कभी-कभी पिताजीसे बातें करने चले आया करते थे। इनकी धार्मिक कार्योंके प्रति भी विशेष रुचि थी। इसीका परिणाम यह हुआ था कि आर्थिक अवस्था साधारण होनेपर भी आप द्वारका और बद्री-केदार—दोनों धामोंकी यात्रा कर चुके थे। शेष दोनों धामोंकी यात्रा करनेके विचारमें थे।

घरकी खेती होनेके कारण इनका अपना कारोबार ठीक था। लड़के भी कमानेवाले और समझदार थे। किसी बातकी चिन्ता करने-जैसी अवस्था न थी।

उन्होंने घरमें प्रवेश किया। हमारे बहुत-कुछ मना करनेपर भी घरकी वर्तमान कहानीको हमारे मुरझाये चेहरोंने उनकी तजुर्बेकार आँखोंके सामने प्रकट कर दिया। वे तुरंत वापस लौट गये।

कुछ ही मिनटोंके बाद देखते हैं, श्रीलाड महोदय स्वयं अनाजकी गठरी उठाये हमारे घरमें पुनः उपस्थित हैं। यह दृश्य देखकर हम सब एक ही साथ आश्चर्य और उनकी उदारताके प्रति श्रद्धामें डूब गये।

उनसे माँगनेपर अन्न मिल जायगा, यह तो हम पहलेसे ही जानते थे। इसके पूर्व अनेक बार उनके द्वारा हम लाभ भी उठा चुके थे। किंतु अन्नकी तंगीके इस जमानेमें सुहृदोंको बार-बार कष्ट देना ठीक नहीं, यह विचारकर उनको धर्म-संकटमें डालना हम उचित नहीं समझते थे। इसीसे उनसे कुछ कहा नहीं था। आज वे स्वयं ले आये। हमें भी अनाजकी अत्यावश्यकता थी ही। अतः हमने गठरी रखवा ली। कृतज्ञताके भावसे हमारे सिर झुक गये थे। अन्न वैसे बहुत अधिक नहीं था, पर इस समय तो एक-एक दाना बहुमूल्य था। इस अद्भुत दाताकी ओर देखें भी तो कैसे? हमारे मस्तक हार्दिक कृतज्ञतासे झुक रहे थे।

अनाज माप लिया और पिताजी बाजार-भावसे उसकी कीमत देने

लगे। ब्लैक-मार्केटकी कीमत चुकाना उनसे दुराव दिखाने-जैसा था। हमारे सारे परिवारको जिसने उपकृत किया, उसका अपमान भला हम कैसे कर सकते थे?

पर बात यहीं समाप्त नहीं हो गयी। हमारे इस दाताने एक ऐसा खेल दिखाया कि जिसे देखकर हम तो दंग रह गये। पिताजी जब उन्हें पैसे देने लगे तब उन्होंने कहा—'मैं व्यापारी तो हूँ नहीं जो आपसे कीमत लूँ। अनाज बेचना मेरा धर्म नहीं है। यह तो मैंने केवल अपने कर्तव्यका पालन किया है।

देवदूतके इस वाक्यका उत्तर हम साधारण मानव दें भी तो क्या दें? उनका औदार्य और सौहार्द हमारे मनको साक्षात्कारकी ओर ले जा रहा था।

—नामदेव वाडेकर, नवापुर

★★★

आदर्श मानवता

एक अमेरिकन नागरिक व्यापारीको अपने काममें एक दिन कुछ ऐसा कड़ा अनुभव हुआ कि जिससे उनके मनमें क्षोभ हो गया। वे उसी क्षुब्धावस्थामें सूने-से घूमते हुए शीघ्रताके साथ समुद्र-तटकी ओर जाने लगे।

उधरसे निकलते हुए एक दूसरे धनी व्यापारीने उन्हें देखा। उनमें समवेदना जगी और उन्होंने समझा कि ये कोई जीवन-संग्राममें ऊबे हुए दुःखी नागरिक हैं, जो समुद्रमें कूदकर जीवनका अन्त करनेके लिये दौड़े जा रहे हैं। उन धनी व्यापारीको दया आयी, उन्होंने बिना ही गहरा विचार किये अपनी जेबसे दो डालर निकाले और साथ ही अपने नाम-पतेवाला कार्ड निकालकर कहा—'लीजिये भाई! यह मेरा कार्ड है, इसमें मेरे आफिसका पता छपा है। इस कार्डके साथ कल मुझसे मिलियेगा। मैं उस समय आपकी सहायता करूँगा।' यह कहकर उन्होंने दो डालर और अपना कार्ड उन नागरिकके हाथमें दे दिया और अपना रास्ता पकड़ा। वे नागरिक भी लौट आये। प्रसंगकी बात अस्पष्ट ही रही।

अमेरिकन नागरिकने सोचा—'इस व्यापारीसे मेरी कोई जान-पहचान नहीं है। ये दयालु प्रतीत होते हैं, इन्होंने मुझे क्या समझा होगा? मैं गरीब हूँ, यही माना होगा? और मैं आत्महत्या करनेके लिये कहीं समुद्रमें कूदनेवाला हूँ, यह समझकर मुझे बचानेके उद्देश्यसे इन्होंने दो डालर दिये होंगे! भगवान्‌की मुझपर दया है। मैं तो केवल आवेशमें आकर ही समुद्र-तटपर शान्तिके लिये गया था। खैर, जो हुआ अच्छा ही हुआ।'

वे नागरिक भी करोड़पति थे। दिन-पर-दिन बीतने लगे। वह नाम-पतेवाला कार्ड उन्होंने अपनी टेबलपर ही रख छोड़ा। रोज कृतज्ञतासे उस कार्डके दर्शन करते हैं, पर उनसे मिलनेके लिये वे उनके आफिसमें नहीं जा सके।

एक दिन वे नागरिक अपनी पत्नीके सहित टेबलके सामने बैठे थे। अचानक एक दैनिक समाचार-पत्र आया। नागरिक पहला पृष्ठ

देखने लगे। उसमें बड़े-बड़े टाइपोंमें वह कार्डवाला नाम-पता छपा था और नीचे लिखा था—'घाटा लगनेके कारण यह फर्म फेल हो गया है, पावनेदार आज तकाजा कर रहे हैं। फर्मके मालिकका पता नहीं है। इस सम्भ्रान्त कुटुम्बपर बहुत बड़ी विपत्ति आ गयी है। हजारों मनुष्योंको दान करनेवाले इस कुटुम्बपर भगवान्‌की कृपादृष्टि हो तो बड़ा अच्छा हो!'

पढ़नेवाले नागरिक इतना पढ़ते ही गद्‌गद हो गये, वे अचानक उठ खड़े हुए। दूसरी ओर जाकर अपने मुनीमसे मिले और इतना ही बोले—'चलो, अभी मेरे साथ, मोटर तैयार करवाओ। तुरंत चलना है; बात करनेके लिये अवकाश नहीं है।'

यों कहकर वे अपनी तिजूरीके पास गये। खोलकर किताब-जैसी कोई चीज निकालकर उसे कोटके अंदरकी जेबमें सरका दिया। मुनीम और मोटर तैयार थे। मोटर कार्डपर छपे नाम-पतेवाले स्थानपर जा पहुँची। नागरिकने उक्त फर्मके मुनीमको अलग ले जाकर पूछा—'भाई! मालिक कहाँ हैं? मुझे उनसे अभी खास काम है, जल्दी करो, तुरंत बताओ, देर मत करो।'

परंतु मुनीम मालिकका पता कहाँसे बतलाता? मुनीमने समझा—'ये भी पावनेदारोंमेंसे कोई होंगे। मालिकका पता बता दूँगा तो ये वहाँ पहुँचकर अपनी रकमके लिये उन्हें हैरान करेंगे।' अतः उसने कहा—'मुझे मालिकका पता नहीं है।'

उस नागरिकने कहा—'भाई! तुमको जो पता हो, वही मुझे बताओ। मैं तुम्हारे मालिकका पावनेदार नहीं हूँ। उनकी विपत्तिमें हिस्सा बँटानेकी मेरी इच्छा है, बताओ भाई! जल्दी बताओ।'

अन्तमें नागरिकने कहा—'बताओ मुनीमजी! सेठको कितनी रकमकी जरूरत है! तुम बताओ, उतनी रकमका मैं चेक लिख दूँ, फिर क्या बात है!'

इतना सुनते ही मुनीम उक्त धनी सद्‌गृहस्थके पवित्र हृदयके भावको समझ गया और उसने उनको मालिकका पता बता दिया।

पता मिलते ही वे अपने मुनीमके साथ वहाँ जानेके लिये मोटरपर सवार हो गये।

उन विपत्तिग्रस्त व्यापारीको दूरसे अपनी ओर आती एक मोटर दिखायी दी। उनका दिल धड़कने लगा—कोई पावनेदार आ रहा है; परंतु अच्छी तरहसे देखनेपर उसे कोई परिचित-सा दिखायी दिया।

मोटर समीप आ गयी थी। नागरिक और मुनीम दोनों उनके पास जा पहुँचे। नागरिकने उनके सामने उस नाम-पतेवाले कार्डको रख दिया। सारी चीजें साफ हो गयीं।

उक्त व्यापारीने कहा—'भाई! मैंने आपको यह कार्ड दिया था और मुझसे मिलनेके लिये भी आपसे कहा था, पर इस समय तो मेरी स्थिति बदल गयी है। आप उस समय आये होते तो मैं अवश्य कुछ सेवा करता।'

हमारे वे आगन्तुक नागरिक तो व्यापारीकी यह बात सुनकर तथा उनकी भावना देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने उनको बीचमें ही रोककर कहा—'महाशयजी! इस समय मैं आपसे कुछ लेनेकी इच्छासे नहीं आया हूँ; पर अपने एक सहृदय और मानवतापूर्ण मित्रके दुःखमें हिस्सेदार होने आया हूँ। आप जरा भी घबरायें नहीं। बताइये—आपको कितनी रकमकी आवश्यकता है? आप संकोच मत कीजिये। जितनी रकम चाहिये—बताइये। यह लीजिये—चेकबुक, लिखिये, इसपर।' यों कहकर उन्होंने अंदरकी जेबसे चेकबुक निकालकर उक्त व्यापारीके हाथमें दे दी।

विपत्तिग्रस्त व्यापारीने सकुचाते-सकुचाते चेकबुकपर लिखा ४०,००,००० (चालीस लाख) डालर। तुरंत ही उस नागरिकने चेकपर अपनी सही कर दी और उसे फाड़कर नागरिक व्यापारीके हाथमें दे दिया।

नमन करके आभारके शब्द सुननेसे पहले ही अपने मुनीमके साथ बँगलेसे नीचे उतरे और मोटरमें बैठकर चले गये। इधर विषादग्रस्त वातावरणमें आनन्दकी तरङ्गें लहराने लगीं।

(अखण्ड आनन्द)

—उमियाशंकर ठाकर

गणेशजीकी अनुकम्पा

हमारे जीवनमें कई अलौकिक घटनाएँ घटती हैं, जिन्हें हम अपनी अज्ञानताके कारण ईश्वरी चमत्कार न समझकर केवल संयोग समझ लेते हैं।

निराशाके अन्धकारमें ईश्वरीय श्रद्धा किस प्रकार आशा एवं सफलताकी किरणें बिखेरती हैं, इसका ज्वलन्त उदाहरण मेरे साथ घटा है।

गतवर्ष मैं राजस्थानके एक कालेजमें प्राध्यापक था। वह नियुक्ति अस्थायी तौरपर थी। वर्ष व्यतीत होनेपर पद त्यागना पड़ा। ग्रीष्मके अवकाशमें कई जगह नियुक्तिके लिये प्रार्थनापत्र भेजे; पर नियुक्ति कहीं भी नहीं हुई। जुलाईका पूरा मास निकल गया। एम्० एस्-सी० में प्रथम श्रेणी तथा विश्वविद्यालयमें विशेष स्थान प्राप्त कर सफलता पानेपर भी नियुक्ति न होना आश्चर्यजनक बात थी। मेरे मित्रों तथा सम्बन्धियोंको भी आश्चर्य हुआ। उन दिनों मैं सवाई-माधोपुरमें अपने अग्रज भ्राताके पास था। मेरे आराध्यदेव प्रारम्भसे ही भगवान् गणेश रहे हैं।

रणथम्भौर दुर्ग सवाई-माधोपुरसे नौ मील ही दूर है। अभेद्य दुर्ग रणथम्भौरके गणेशजी राजस्थानमें ही नहीं, भारतमें प्रसिद्ध हैं। मैंने कई बार गणेशजीके दर्शन किये थे। धर्मप्रेमी श्रद्धालु जनताकी उनमें पूरी आस्था है। वे सबकी मनोकामना पूर्ण करते हैं। भाद्र शुक्ल चतुर्थीको वहाँ एक बड़ा मेला भी लगता है।

मन्दिर अति प्राचीन है। राणा हमीरदेवके समयका कहा जाता है।

अस्तु, एक दिन मैं सपरिवार भगवान् गणपतिके दर्शनको गया।

कहीं भी नियुक्ति न मिलनेसे मनमें निराशा थी। मैंने अपनी जटिल समस्या भगवान् विघ्नविनाशकके सामने रखी।

दर्शन कर पुनः घर लौटा। पहुँचनेपर नौकरने मुझे एक लिफाफा दिया, जो उसी समय डाकसे आया था। मैंने उसे खोला। वह नियुक्ति-पत्र था। मेरी नियुक्ति राजस्थानके ही एक कालेजमें प्राध्यापकके पदपर हो गयी थी। आप इसे केवल संयोगमात्र ही कहेंगे, पर मुझे विश्वास है कि यह भगवान् एकदन्तकी ही कृपाका परिणाम था, जिससे मेरी जटिल समस्या सुलझी। यही नहीं, इसके पश्चात् तीन और लगातार अन्य प्रान्तोंसे नियुक्ति-पत्र मिले।

भगवान् गणेशने हमारी और भी अनेक समस्याओंको सुलझाया है। कई बार उन्होंने मुझे मृत्यून्मुख अनेक रोगोंसे बचाया है। उनकी कृपासे अनेक विपत्तियाँ समाप्त हुईं। गणेशचालीसा एवं गणेश-स्तोत्रके पाठसे आध्यात्मिक एवं मानसिक शान्ति मिली। वास्तवमें भगवान् गणेश विघ्नविनाशक हैं।

—प्रो० श्याममनोहर व्यास, एम्० एस्-सी०

जार्ज वाशिंगटनका त्याग

पहले संयुक्त राष्ट्र अमेरिका इंग्लैंडके अधीन था। इंग्लैंडकी दासतासे मुक्ति पानेके लिये अमेरिकाको एक युद्ध लड़ना पड़ा था; जो इतिहासमें अमेरिकाके स्वातन्त्र्य-युद्धके नामसे प्रसिद्ध है। इस युद्ध-में अमेरिका विजयी रहा। इस विजयका सारा श्रेय जार्ज वाशिंगटन (१७३२—१७९९) को था। वाशिंगटन एक लोकप्रिय नेता और सफल सेनानायक थे। अपने सैनिकोंमें वे बहुत ही लोकप्रिय थे। अमरीकी सैनिक उनके लिये प्राण देते थे। इस प्रेम और भक्तिका फल यह हुआ कि कुछ सैनिक अधिकारियोंने चुपके-चुपके इस बातकी तैयारी प्रारम्भ कर दी कि जार्ज वाशिंगटनको संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाका सम्राट् घोषित किया जाय और उससे एक नये राजवंशकी स्थापना हो। जब सेनाका अधिकांश भाग इसके लिये तैयार कर लिया गया, तब इस मामलेमें जो सबसे अधिक उत्साह दिखला रहे थे, उन कर्नल निकोलाने वाशिंगटनको इस शुभ अवसरके लिये तैयार हो जानेको लिखा। वाशिंगटनने पत्र प्राप्त करके निकोलाको पत्रका जो मुँहतोड़ उत्तर लिखा उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

न्यूवर्ग, मई २२ सन् ८२ (१७८२ ई०)

श्रीमान्!

.......मैं श्रीमान्‌को विश्वास दिलाता हूँ कि सारे युद्धके दौरानमें मुझे किसी भी घटनासे इतना कष्ट नहीं पहुँचा, जितना इस समाचारसे कि सेनामें इस प्रकारकी विचारधारा चल रही है जैसा कि आपने अपने पत्रमें प्रकट किया है। मैं ऐसे विचारोंसे घृणा करता हूँ और उनकी कठोर निन्दा करता हूँ।

मैं नहीं समझ पाता कि मेरे किस आचरणसे आपको मेरे सामने ऐसा प्रस्ताव रखनेका साहस हुआ.... यदि आपको अपने देशका, अपना या आनेवाली संततियोंका कुछ भी ध्यान है, यदि आपके हृदयमें मेरे प्रति कुछ भी सम्मानकी भावना है तो आप इस प्रकारके विचारोंको अपने

मनसे निकाल दीजिये।

प्रणाम, मैं हूँ श्रीमान्! आपका आज्ञाकारी
सेवक —
जार्ज वाशिंगटन

जार्ज वाशिंगटन अमेरिकाके प्रथम राष्ट्रपति थे। दुबारा भी वे ही राष्ट्रपति चुने गये। तीसरी बार भी जनता सर्वसम्मतिसे उन्हींको राष्ट्रपति बनाना चाहती थी, परंतु उन्होंने यह कहकर उस पदको अस्वीकार कर दिया कि 'बार-बार एक ही व्यक्तिके राष्ट्रपति बननेसे कहीं राजतत्त्व या अधिनायकवादकी नींव न पड़ जाय।'

—राजेन्द्रप्रसाद जैन

★★★

सद्व्यवहारसे स्वभाव-परिवर्तन

कुछ वर्षों पहलेकी बात है—बाँकेविहारी और बालमुकुन्द दो पड़ोसी थे। बाँकेविहारी बड़े उग्र स्वभावका और तामसी प्रकृतिका था तथा बालमुकुन्द सर्वथा सौम्य स्वभाव एवं सात्त्विकी वृत्तिका। दोनोंके खेत सटे-सटे थे। खेतकी जमीनको लेकर बाँकेविहारीने आपत्ति की—यद्यपि बालमुकुन्दका कोई दोष नहीं था, न उसकी नीयत ही खराब थी, पर बाँकेविहारीने पटवारीसे मिलकर एक बीघा खेतकी जमीनकी झूठी माँग की और बालमुकुन्दपर उसे चोरीसे दबा लेनेका मिथ्या आरोप लगाया। बालमुकुन्दने अपनी सात्त्विक स्वभावा पत्नीसे सलाह करके सब कुछ सह लिया और बाँकेविहारीकी माँग मिथ्या तथा अन्याययुक्त होनेपर भी चुपचाप जमीन उसे दे दी। इतना ही नहीं, अपनी भूल स्वीकार करके उसे उसके इच्छानुसार एक क्षमायाचना-पत्र भी लिख दिया। इससे बाँकेविहारीका दिमाग ठीक होना तो दूर रहा, वह और भी बिगड़ गया, 'लाभसे लोभ बढ़ता है।'—इस नीतिके अनुसार बाँकेविहारीने बालमुकुन्दको और भी दबाने और उसका हक मारनेका विचार किया। दोनोंके घरके बीचकी हिस्सेदारीकी एक ही दीवाल थी। बाँकेविहारीने उस दीवालपर एकमात्र अपना ही अधिकार बताया और उसे तोड़नेका निश्चय किया। कहा, इस दीवालकी जगह दूसरी कमरेकी दीवाल उठाकर नया कमरा बनाना है। बालमुकुन्दने बड़े नम्र शब्दोंमें इसका विरोध किया। उसे सुनते ही वह आगबबूला हो गया और बालमुकुन्दको मारने दौड़ा। बालमुकुन्दको बचानेके लिये उसका सोलह वर्षका लड़का दीनानाथ बीचमें आ गया तो बाँकेविहारीने उसीके सिरपर लाठी जमा दी। उसका सिर फट गया। बालमुकुन्द और उसकी स्त्रीको बड़ा दुःख हुआ, पर वे कुछ बोले नहीं। लड़केको अस्पताल ले गये।

इधर दीनानाथकी इस दशाको देखकर बाँकेविहारीका गुस्सेका पारा उतरा। उसने सोचा 'अब तो फौजदारी मुकदमेमें फँसना पड़ेगा। बालमुकुन्द सीधा आदमी है, उसे मना लिया जाय तो इस विपत्तिसे

छुटकारा हो सकता है। वह तुरंत भागा हुआ अस्पताल पहुँचा और पश्चात्तापके आँसू बहाता हुआ बालमुकुन्दको एक तरफ एकान्तमें ले जाकर बोला—'भाई! मैं बड़ा नीच हूँ, मुझसे बड़ी भारी गलती हो गयी, मेरे द्वारा क्रोधके आवेशमें यह कुकर्म बन गया। अब तुम ही मेरी जान बचा सकते हो। तुम कह दो कि पैर फिसलकर दीनानाथ गिर गया था, इससे सिरमें चोट लग गयी।' तुम ऐसा कर दोगे तो मैं बच जाऊँगा। मुझे अब अपनी सारी भूलें नजर आ रही हैं। मैंने तुम्हारा सदा ही बुरा किया और तुमने सदा मेरा उपकार किया। अब मैं तुम्हारा कभी गुण नहीं भूलूँगा। तुम्हारी एक बीघा जमीन मैं वापस लौटा दूँगा। दीवालका दावा भी मेरा झूठा ही था। मैं अब वैसी कोई बात नहीं करूँगा। तुम मुझे बचाओ।'

बालमुकुन्दकी स्त्री पास ही खड़ी थी। उसने सारी बातें सुनकर पतिसे कहा—'यह बेचारे इतना पश्चात्ताप तथा दुःख प्रकट कर रहे हैं, तो इनकी बात मान लीजिये, बच्चा भगवान्‌की दयासे अच्छा हो ही जायगा। इनको क्लेश हो, इससे हमें क्या मिलेगा।' बालमुकुन्दका तो यह विचार था ही। उन्होंने यही डाक्टरसे कहा। पुलिसमें बयान देनेका तो कोई प्रसंग ही नहीं था, क्योंकि अब तो प्रसंग यह घरकी एक साधारण दुर्घटनामात्र रह गया था। दीनानाथके गहरी चोट नहीं थी, वह महीनेभरमें अच्छा हो गया। इस घटनाने और बालमुकुन्दके सद्व्यवहारने बाँकेविहारीके जीवनमें विचित्र परिवर्तन ला दिया। उसका स्वभाव ही बदल गया। दोनों पड़ोसी बड़े प्रेमसे रहने लगे।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई।

—अवधराम मिश्र

परदुःखकातरता

ग्रीष्म ऋतु थी। दोपहरका समय था। भगवान् भास्कर अपनी प्रखर किरणोंके द्वारा धरतीको तपा रहे थे। कलकत्ता नगरीके बीच सड़कपर एक बुढ़िया सिरपर एक बड़ा बोझा उठाये चली जा रही थी।

वृद्धावस्था, दोपहरकी झुलसा देनेवाली गरमी एवं क्षीणकाय दुर्बल शरीर; इन सबने वृद्धाको थका दिया था। पसीनेसे लथपथ हाँफती हुई वह आगे बढ़ रही थी।

अन्तमें गरमीके मारे वह वृद्धा आगे बढ़नेमें असमर्थ हो गयी और प्रखर धूपमें ही राजमार्गके एक किनारे निःसहाय होकर बैठ गयी। अनेकों लोग आये-गये, किसीने वृद्धाकी ओर ध्यान नहीं दिया।

कुछ समय उपरान्त उधरसे बाबू यतीन्द्रनाथ निकले। यतीन्द्रनाथ परपीड़ासे हार्दिक क्लेश अनुभव करनेवाले भारतीय युवक थे।

उन्होंने देखा कि एक बुढ़ियाके आगे एक बोझा पड़ा है, पर उसे उठानेकी उसमें शक्ति नहीं रह गयी है।

यतीन्द्रनाथ तुरंत वृद्धाके पास गये और बोले—'माँ! तुम आगे-आगे चलो—मैं यह बोझा तुम्हारे घरतक पहुँचा आता हूँ।'

वृद्धा युवककी दयाभावनाको देखकर गद्गद हो उठी और अन्तःकरणसे उन्हें आशीर्वाद देने लगी। यतीन्द्रनाथने वह बोझा उठाकर वृद्धाके घर पहुँचा दिया।

यही नहीं—उन्होंने जब वृद्धाकी दीन-दशा देखी तो द्रवित हो गये और वे उसे पाँच रुपया प्रतिमास देते रहे।

आजके इस संकुचित स्वार्थप्रधान युगमें, जब कि मनुष्य परमार्थ-भावनासे तेजीके साथ दूर होते जा रहे हैं, यह सच्ची घटना सच्ची मानवताका चिर-नवीन सन्देश सुनाती है। वास्तवमें असहायोंकी सेवा करना ही सच्चा धर्म है।

—प्रो० श्याममनोहर व्यास, एम्० एस्-सी०

★★★

ईमानदारीकी प्रतिष्ठा

कुस्तोर कोलियरी बहुत बड़ी थी। वह लगभग ७०० मजदूरोंकी जीविका चलाती थी। उसके मालिकने मजदूरोंकी जरूरतोंके सब सामान बेचनेका ठेका अपने साले भगवती बाबूको दे रखा था। भगवती बाबूने यह व्यवस्था की थी कि मजदूरोंको आवश्यक चीजें उधार दी जायँ और महीना पूरा होनेपर वे पैसे उनके वेतनमेंसे सीधे काट लिये जायँ। इससे मजदूरोंको रोज-रोज पैसे नहीं देने पड़ते थे, वे झंझटसे बचते थे और अधिकांश अपनी जरूरतकी सभी चीजें सस्ती-महँगी इसी दूकानसे खरीद लेते थे। भगवती बाबू भी बड़े ही ईमानदार थे। उन्हें नफेके रुपयोंकी अपेक्षा अपनी प्रतिष्ठा कहीं अधिक प्यारी थी, इससे बहुत वर्षोंतक दूकान चलानेपर भी उन्होंने अपनी ईमानदारीपर जरा भी आँच नहीं लगने दी। अब उम्र बड़ी हो जानेपर उन्होंने दूकानके कामसे अपनेको हटाकर पूजा-पाठमें मन लगाया। दूकानका काम उनके पुत्रके हाथोंमें आ गया। उनका पुत्र निरंजन अपने पिताकी ईमानदारीकी बातको हँसीमें उड़ाकर काम-धन्धेमें तरह-तरहकी अनुचित रीतियोंको आजमाने लगा।

भगवती बाबू यद्यपि काम-काजसे निवृत्त होकर पूजा-पाठमें ही लगे रहते थे, परन्तु दूकानकी साखकी ओर उनका ध्यान लगा रहता था और ईमानदारीसे प्राप्त की हुई प्रतिष्ठा—अपने जीवनकी अमूल्य कमाई—पुत्रकी लोभी वृत्तिसे नष्ट न हो जाय, इसकी उन्हें सदा चिन्ता लगी रहती थी।

एक बार उन्होंने गुप्तरूपसे एक मजदूरको बुलाया और दूकानसे एक सेर चीनी मँगवायी। जब मजदूर चीनी लेकर आया, तब भगवती बाबूने कोलियरीकी गोदामके तराजूसे उसे वजन करवाया। वह ठीक आध पाव कम थी। वे कुछ बोले नहीं और दूकानपर जाकर बैठ गये और जिस दिनसे पुत्रको काम सँभलवाया था, उस दिनसे आजतक कौन-कौन चीनी ले गया था, इसकी एक फेहरिस्त बना ली। फिर, प्रत्येक ग्राहकको एक सेर चीनीके पीछे आध पाव चीनीके दाम लौटा दिये।

परंतु पुत्रके इन अनुचित कामोंसे उनके मनपर बड़ी भारी चोट पहुँची थी। उसका घाव इतना गहरा था कि उन्हें प्रतिष्ठा खोकर दूकान रखनेकी ही इच्छा नहीं रही। इसलिये उन्होंने कोलियरीके मालिक अपने बहनोईको बुलाकर दूकान उन्हें वापस दे दी और पुत्रको कोलियरीके कार्यालयमें कड़ी मेहनतकी नौकरीमें लगा दिया। उनकी पत्नी तथा पुत्रने माफी माँगकर फिर ऐसा न करनेका वचन भी दिया और कुटुम्बकी भलाईके लिये बहुत अच्छी आमदनीवाली इस दूकानको न छोड़नेके लिये वे बहुत गिड़गिड़ाये भी, किंतु कुटुम्बके लिये अच्छी कमाईकी अपेक्षा उन्हें कुटुम्बकी प्रतिष्ठा विशेष महत्त्वकी वस्तु लगी और अपने निश्चयपर दृढ़ रहकर उन्होंने दूकान कोलियरीको सुपुर्द कर दी। पुत्र नौकरी करने लगा और भगवती बाबू अपनी साधारण बचतके ब्याजसे अत्यन्त सादगीके साथ अपना निर्वाह करते हुए भगवत्स्मरणमें मग्न हो गये। (अखण्ड आनन्द)

—शान्तिलाल बोले

★★★

मन्त्रका प्रभाव

घटना कुछ वर्ष पहलेकी है। एक बार हमारे यहाँ हैजाका प्रकोप बड़े जोरोंसे हुआ। रोज तीन-चार शव गाँवसे निकलते थे। महामारीका प्रकोप इतना बढ़ चला था कि बहुत बड़ा गाँव बिलकुल जनशून्य-सा प्रतीत होता था। गाँवके पुरोहित लोग गाँव छोड़कर भाग चले थे। अधिकांश व्यक्ति तो कालके गालमें चले ही गये थे, शेष मारे भयके जिन्दा ही मुर्दा बन गये थे। गाँवसे कुछ दूर एकान्तमें पीपल वृक्षके नीचे भगवतीका एक स्थान था। हमारे परिवारमें केवल पिताजी ही स्वस्थ थे। वे प्रतिदिन शामको दीप जलाने एवं आरती उतारनेके लिये भगवतीके स्थानपर जाया करते थे। दीप जलाते एवं आरती उतारते समय मन्दिरमें एक प्रकारका भयानक शब्द होता था। वापस आते समय फिर मन्दिरकी ओर पीछे देखना बड़े ही साहसका काम होता था।

महामारीके प्रकोपके समय एक दिन सबेरे एक जटाधारी, भस्म लपेटे नंगे साधुने गाँवमें प्रवेश किया। सबसे पहले मेरा ही घर पड़ा। वे आकर मेरे द्वारपर बैठ गये। उन्होंने सर्वप्रथम यही प्रश्न किया—'बच्चा! गाँव बहुत उदास-सा लग रहा है। तुम भी उदास लगते हो, क्या बात है?'

पिताजीने सारी बातें बतलायीं। उन्होंने गाँवमें जाकर आश्वासन दिया तथा नीचे लिखे मन्त्रोंका सबेरे सात सौ, दोपहरको सात सौ तथा शामको भी सात सौ बार घीके हवनसहित जप किया। इसका परिणाम दो ही दिनमें जादूकी तरह हुआ। गाँवके सभी लोग स्वस्थ हो गये। तबसे हमारे गाँवमें अबतक महामारी नहीं आयी।

महात्माजीने बतलाया कि इस मन्त्रको अपने घरके प्रत्येक द्वारपर कागजपर लिखकर साट देनेसे महामारीका प्रकोप नहीं होता है। इस मन्त्रको गुप्त रखना चाहिये। नास्तिकोंको बतलानेसे महत्त्व कम हो जाता है। हमलोगोंको अनेकानेक उदाहरणोंसे इस मन्त्रपर पूर्ण विश्वास है।

मन्त्र—

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥
जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥

—श्रीचन्द्रेश्वर 'निर्मल' चोरमा

एकान्तरा ज्वरकी रामबाण दवा

एकान्तरा ज्वरके लिये 'अपामार्ग' रामबाण दवा है। मेरा बहुत वर्षोंका अनुभव है। सैकड़ों रोगियोंपर इसका उपयोग करके मैं लाभ उठा चुका हूँ। प्रयोगकी विधि निम्नलिखित है—

जिस रविवारको पुष्य नक्षत्र हो, उससे एक दिन पहले 'अपामार्ग' वनस्पतिके पेड़के पास जाकर जलसे उसे स्नान करावे, फिर उसपर रोली (कुंकुम) चढ़ावे, तदनन्तर तिल-चावल चढ़ाकर उसकी जड़में नालका रश्कासूत्र बाँध दे और फिर यह कहकर उसे निमन्त्रण दे आवे कि मैं अपने कार्यकी सिद्धिके लिये कल प्रातःकाल आपको लेने आऊँगा। फिर दूसरे दिन पुष्य नक्षत्रयुक्त रविवारको प्रातःकाल सूर्योदयके समय उसकी मूल (जड़को) बँधे हुए रक्षासूत्रसमेत उखाड़ ले आवे। इतना ध्यान रहे कि जड़ उखाड़कर लेते समय कोई टोकाटाँकी न करे कि तुम क्या कर रहे हो ?'

इस प्रकार लायी हुई अपामार्गकी जड़ घरमें रखी रहे। यह वर्षोंतक काममें ली जा सकती है। एकान्तरा ज्वरके रोगीको जिस दिन ज्वर आनेकी पारी हो, उस दिन ज्वर आनेके एक-दो घंटे पहले अपामार्गकी थोड़ी-सी जड़ उसी रक्षासूत्रमें बाँध सात गाँठ दे दे। फिर गूगलका या गौ-घृतका धूप देकर दक्षिण भुजा या कण्ठमें बाँध दे। उसी दिनसे ज्वर आना बन्द हो जायगा। कदाचित् उस दिन ज्वर आया तो सम्भव है बहुत जोरसे आवे। घबराना नहीं चाहिये। दूसरी पारी बिलकुल नहीं आयेगा।

इस जड़ीका उपयोग केवल सेवाके लिये ही करे। पैसा कमानेके लिये कदापि न करे।

—देवीप्रसाद उर्फ छोटेलाल दूबे,
रायपुरदरवाजा बाहर, काँकरिया रोड, अहमदाबाद

★★★

रामकुमार और रामविलास दोनों सगे भाई थे। आसामके एक मुकाममें उनकी दुकान थी। दोनों भाइयोंमें और दोनों पत्नियोंमें परस्पर अत्यन्त प्रेम था। दूकानका काम बहुत ठीक चलता था। वे सारा काम हाथसे करते। बहुत थोड़ा इन्कमटैक्स था, आजकी भाँति सरकारी लूट थी नहीं; सब चीजें सस्ती थीं, अतएव दूकानमें खर्च काटकर तीन-चार हजार रुपये वार्षिक मुनाफेके बच जाते थे। अभी तीन ही साल दूकान किये बीते थे। पाँच-सात हजारकी पूँजी हो गयी थी। बहुत सुखी थे।

उस समय विलासिता तो थी नहीं। इसलिये पैसे फजूल खर्च नहीं होते थे। कपड़ोंका खर्च बहुत ही कम था। जो रुपये बचते उसके ठोस सोनेके गहने बना लिये जाते थे। इन भाइयोंके पास जब आठ हजारकी पूँजी हो गयी, तब तीन हजारका सोना खरीदकर उसके 'बंद-बगड़ी' बनानेका निश्चय सर्वसम्मतिसे हुआ । बड़े भाई रामकुमार तथा भाभीके बहुत अधिक आग्रहसे पहले रामविलास (छोटे भाई) की स्त्रीके लिये गहना बनाया गया। देशसे गहना बनकर आ गया। छोटे स्थानमें गहना पहनकर कहाँ जातीं। विवाह-शादीमें ही गहना पहना जाता था। अतएव जो बंद-बगड़ी बनकर आये थे, उन्हें कपड़ोंकी पेटीमें ही सँभालकर रख दिया गया। लोहेकी आलमारी तो तबतक मँगवायी नहीं थी।

इनके एक बड़ी बहिन थी—मनभरीबाई। माँ पहले मर गयी थी। इसलिये बहिनने ही दोनोंको देशमें पाला-पोसा था। बहिनके पतिका एक साल पहले देहान्त हो गया था। उसका लड़का गल्लेका व्यापार करता था। अनाज भरकर रखता, फिर धीरे-धीरे बेचता। पर उसके दैवदुर्विपाकसे अनाजमें बड़ी मंदी आ गयी। उसके आठ-दस हजारका घाटा हो गया। जहाँतक बना, गहना आदि बेचकर महाजनका ऋण उतारनेकी चेष्टा की गयी। पर लगभग तीन हजार रुपये महाजनोंके बाकी रह गये। वे बहुत कड़े आदमी थे। नालिश करके उन्होंने डिग्री करवा ली। मनभरीबाई पतिके मर जानेके बाद

भाइयोंके पास आसाम आयी थी और वहीं ठहर गयी थी। दोनों भाई उसे माँकी तरह मानते, भौजाइयाँ बड़े आदर-सम्मानसे उसकी सेवा करतीं और उसकी आज्ञानुसार चलतीं। इसी बीचमें मनभरीबाईके लड़केका अपनी माँके नाम गुप्त पत्र आया। एक आदमी देशसे आया था, उसीके हाथ पत्र मनभरीको मिला और वहीं उसे एकान्तमें पढ़ा भी गया।

पत्रमें सारी हालत लिखी थी। वे लोग डिग्री जारी करवाकर मकान नीलाम करवाना चाहते थे, यह लिखा था। साथ ही लड़केने यह भी लिखा था कि 'मेरा जी बहुत घबरा रहा है। कई बार आत्महत्या करनेकी मनमें आती है,' और जल्दी माँको देश बुलाया था। इस पत्रको सुनकर मनभरीबाई अत्यन्त चिन्ताग्रस्त हो गयी। उसकी बुद्धि भ्रमित हो गयी। किसी तरह पुरखोंकी इज्जत और लड़केकी जान बचानी है। भाइयोंसे कहनेकी हिम्मत नहीं हुई। मनमें पापबुद्धि आयी। कामना ही पापकी जड़ होती है। उसने मनमें निश्चय किया—भाभीकी पेटीमेंसे गहना निकालकर ले चलना है। पीछे देखा जायगा। इससे एक बार तो काम चलेगा, लड़केके प्राण बच जायँगे। फिर कमा लेनेपर भाइयोंकी रकम वापस कर दी जायगी।

भाइयों-भाभियोंको समझा-बुझाकर जानेका दिन निश्चय कर लिया गया और उपर्युक्त पाप-निश्चयके अनुसार भाभीकी पेटी खोलकर बन्द-बगड़ी (गहने) निकाल लिये गये। चाभी इन्हींके पास रहती थी। यही मालकिन थीं। परन्तु जिस समय यह भाईकी कोठरीमें भाभीकी पेटी खोलकर गहना निकाल रही थीं, उस समय उसी कोठरीमें सोये हुए छोटे भाई रामविलासकी नींद टूट गयी। उसने सब देख लिया। पर जान-बूझकर आँखें मूँद लीं। मनभरीबाई सफलमनोरथ होकर कोठरीसे बाहर चली गयीं। रामविलासने किसीसे कुछ नहीं कहा, मानो कुछ हुआ ही नहीं। बड़ी प्रसन्नतासे जो कुछ बना देकर भाइयों और भाभियोंने हाथ जोड़े और आँखोंसे आँसू बहाते हुए मनभरीबाईको विदा कर दिया। अवश्य ही मनभरीबाईके

आँसू दो प्रकारके थे, स्नेहहृदय भाई-भाभियोंके बिछोहके और साथ ही अपने कुकर्मकी ज्वालाके। उसने बाध्य होकर ही पाप किया था, परंतु तबसे उसका हृदय जल रहा था।

मनभरीबाई देश पहुँच गयी। उसके पहुँचका पत्र आ गया। तभी उन्हें उसके लड़के (भानजे) की बुरी हालतका पूरा पता लगा। तब एक दिन रामविलासने अकेलेमें सारी बातें अपने बड़े भाई रामकुमारको बताकर कहा—'भाईजी! बाईका जन्म इस घरमें हमसे पहले हुआ था। उसीने हमको पाला-पोसा, आदमी बनाया। हम अपने चमड़ेकी जूतियाँ बनाकर उसे पहना दें, तब भी बदला नहीं उतर सकता। फिर—हमारे ही माता-पिताकी पहली संतान होनेके कारण उसका अधिकार भी तो है ही, इस समय वह बहुत संकटमें है। पतिका देहान्त हो गया। घरमें घाटा लग गया। हमारी बहिनने संकोचमें पड़कर ही यह काम किया है। नहीं तो उसके कहनेकी आवश्यकता ही नहीं थी, हमें पता लगनेपर अपने कपड़े-गहने ही नहीं, अपना शरीर बेचकर भी हम उसका दुःख दूर कर देते। यही हमारा धर्म है। अब भाईजी! उससे कुछ नहीं कहना है। आप कहें तो मैं आपकी बहूको सब समझा दूँ। भाई रामकुमार छोटे भाईकी इस श्रेष्ठ भावनाको जान-सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। दोनोंने सलाह करके दोनों स्त्रियोंको बुलाया। वे स्त्रियाँ भी सचमुच साध्वी थीं। सुनकर छोटे भाईकी स्त्री (जिसका गहना था) ने अपनी जेठानीकी मारफत यह कहलाया कि—'यह तो बहुत ही अच्छा हुआ कि इस संकटमें यह गहना बाईजीके काम आ गया। यहाँ तो फालतू ही पड़ा था। एक दुःख इस बातका अवश्य है, वह यह कि मेरे मनमें अवश्य कोई स्वार्थ या ममताकी विशेषता है, उसीके कारण बाईजीको संकोचमें पड़कर यह काम करना पड़ा और उन्होंने मुझसे कुछ कहा नहीं। शायद उनको यह शंका होगी कि माँगनेपर यह नहीं देगी। आपलोग तो तीनों दे ही देते, मेरे ही पापी हृदयके डरसे बाईजीको इस प्रकार करना पड़ा।' बहूकी बात सुनकर जेठ-जेठानी-

का हृदय गद्गद हो गया। उनकी आँखोंसे प्रेमके आँसू बह चले। उसके पति रामविलासके तो आनन्दका पार ही नहीं था। वह तो इस प्रकारकी साध्वी तथा उदारहृदया पत्नीकी प्राप्तिसे आज अपनेको अत्यन्त गौरवान्वित समझ रहा था।

दो वर्ष बाद मनभरीबाईकी लड़कीके विवाहमें सारा परिवार भात भरने गया। वहाँ मनभरीबाईने पहलेसे ब्याजसमेत पूरे रुपये तैयार कर रखे थे। लड़केने अकस्मात् रुपये कमा लिये थे। मनभरीबाईने अपने भाई-भाभियोंके सामने थैली रख दी और वह सुबक-सुबककर रोने लगी। सभीके धीरजका बाँध टूट गया। पाँचों रोने लगे। सबके हृदयोंमें पवित्र भावोंकी रसधारा उमड़ रही थी और वही आँसुओंके रूपमें बाहर बहने लगी थी।

भाइयों और भाभियोंने रुपये लिये नहीं। बड़े आदरसे पूरा संतोष करवाकर लौटा दिये। उन चारोंने बहिनके इस कार्यमें उसको नहीं, अपनेको ही दोषी माना और कहा कि 'बाई! हमारे स्नेहमें कमी थी, प्रेमका अभाव था। हम अपनी वस्तुओंपर अपना ही अधिकार मानते थे, बहिनका नहीं। तभी हमारी संतहृदया बहिनको संकटके समय उससे बचनेके लिये छिपकर गहना लेना पड़ा। यह हमारा ही कलुष और कुभाग्य है।' धन्य !

—हरदेवदास

काछी बालकपर श्रीगोपालजीकी कृपा

ग्राम करारागंज, जिला छतरपुर म० प्र० में प्रतिवर्ष श्रावण द्वादशीको श्रीगोपालजी महाराजका जलविहार होता है। इस वर्ष भी दिनांक १४ । ९ । ५९ सोमवारको सायं ४ बजे श्रीगोपालजीका विमान मन्दिरसे उठकर दशरथी (धसान) नदीमें विहारके लिये गया। वहाँसे ग्राममें भ्रमण करनेके लिये लौटा। उस समय ग्राममें अन्नदान अथवा चढ़ोत्तरीके रूपमें जो अन्न मिलता है, उसका कार्य 'चेंपला' नामक ८-९ वर्षीय एक काछी बालकको श्रीमहंतजीने सौंपकर उसे एक टोकनी दे दी और समझा दिया कि प्राप्त अन्न इसमें लेते जाना। मन्दिर लौटनेपर तुम्हें श्रीगोपालजी महाराजका प्रसाद दिया जायगा। बालकने इस कार्यको सहर्ष स्वीकार कर लिया। ग्राम-भ्रमण करते हुए विमान श्रीशिवजी महाराजके हरिशंकरी चबूतरेपर प्रतिवर्षकी भाँति रखा गया। ग्रामीण बन्धु भजन-कीर्तन आदि करने लगे। चेंपला भी अपनी टोकनी विमानके बगलमें रखकर विमानके पीछे उसी चबूतरेपर आकर सो रहा। कुछ देर पश्चात् विमान उठा। तब जय-जयकारकी ध्वनिसे चेंपलाकी निद्रा भंग हो गयी। वह घबराकर सुषुप्त-अवस्थामें सामनेसे न उतरकर बायीं ओरको चल दिया और चबूतरेसे लगे हुए कुएँमें गिर पड़ा, जो पंद्रह हाथ गहरा भरा है और इतना ही खाली है। धमाकेकी आवाज सुनकर ग्रामीण दौड़े और एक गैसबत्ती तुरंत रस्सीमें बाँधकर कुएँमें लटकायी। देखते क्या हैं कि एक बालक कुएँकी ईंटें पकड़े अपने पैर चला रहा है। तुरंत एक आदमी रस्सेके बल कुएँमें उतरा और उस बालककी कमरमें रस्सी बाँधकर बड़ी सावधानीसे उसे बाहर निकाल लाया। उस बालकके शरीरके कपड़े छातीसे ऊपर बिलकुल सूखे थे। जब उससे पूछा गया कि 'तुम कैसे डूबे नहीं?' तब उसने बताया कि "मुझे

यह पता नहीं है कि मैं कुएँमें कब गिरा। मुझे तो यही ज्ञात हुआ कि अपने तालाबमें ही लोट रहा हूँ। मेरे साथ वहाँ एक और बालक था, जो साँवरे रंगका था और विमानमें बैठे हुए भगवान्‌के सिरपर जैसा चाँदीका मुकुट लगा है वैसा ही उसने भी सिरपर धारण किया हुआ था, जो बहुत चमकीला था और उससे कुएँभरमें उजियाला दिखायी दे रहा था। उसने मुझे अपने हाथोंसे पानीके ऊपर सँभाल रखा था। फिर उसने मुझे समझाया कि 'तुम घबराना मत।' इतना कहकर उसने अपने हाथोंसे मेरे हाथ पकड़कर कुएँकी ईंटें पकड़ा दीं और जब ऊपरसे लालटेन आयी, तब वह न जाने कहाँ चला गया।'' चेंपलाके मुखसे यह सब बातें सुनकर हम सब लोग अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान् श्रीगोपालजीकी जय-जयकार करने लगे और सोचने लगे कि भगवान्‌की चढ़ोत्तरीकी टोकनी थोड़ी देर लिये रहनेपर ही भगवान्‌ने चेंपलाको कुएँमें दर्शन दे दिये। तत्पश्चात् चेंपला प्रसन्नतापूर्वक अपने घर चला गया। बोलिये राधावर गोविन्दकी जय!

—फूलचन्द्र त्रिपाठी